आश्विन-कार्तिक २०४३ | वर्ष ४५

अक्टूबर-नवम्बर १९८६ | संख्या ७-८

दीपावली की हार्दिक शुभ कामनायें

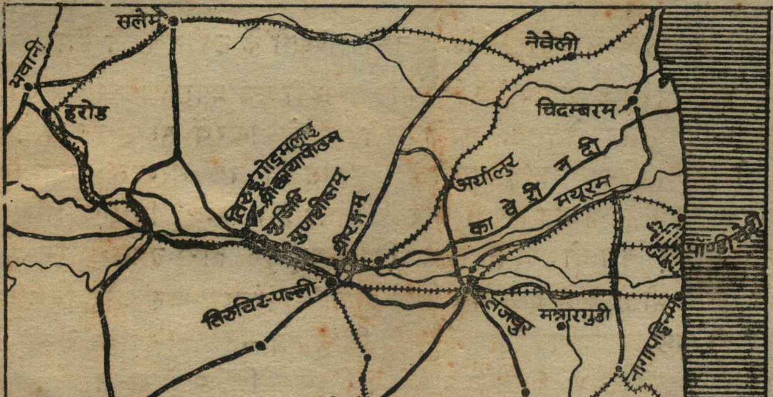

तिरुचिरपल्ली से ४० कि० मी० दूर सलेम-तिरुचि राजमार्ग पर स्थित 'श्रीछाया-पीठम्'

[विशेष परिचय हेतु देखें—इस अङ्क के पृष्ठ १ से १० तक]

यह प्रति ३) ५० रु० ❁ वार्षिक मूल्य २१ रु० ❁ दो विशेषाङ्क सहित वार्षिक मूल्य ५५ रु०

वर्ष ४५ : आश्विन-कार्तिक २०४३ वि०—अक्टूबर-नवम्बर १९८६ : संख्या ७-८

१ सम्पादकीय : 'श्रीछाया-पीठं' का प्रथम परिचय १
२ 'श्रीछाया-पीठं' का दुर्लभ इतिहास : परम पूज्या योगिनी श्री निर्मलाम्बा, तिरुइंगोमलाइ २
३ जगद्-गुरु स्वामी श्रीअद्वयानन्द नाथ : श्री स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ३
४ 'श्रीछाया-पीठं' के सद्गुरु : श्री दुःखो श्याम पट्टनायक शास्त्री, एम० ए०, भुवनेश्वर (उड़ीसा) ६
५ श्री ललिता महिला समाजम् ९
६ दक्षिण-भारत में दुर्गा-पूजा : श्रीकृष्ण पिच्चुमणि अय्यङ्गार, श्रीरङ्गम् (तमिलनाडु) ११
७ भगवान् श्रीगोपीनाथजी आश्रम : पं० श्रीप्राणनाथ कौल, श्रीनगर (कश्मीर) १६
८ बाबाश्री चरितामृत (लेख-माला) : गताङ्कों से प्रकाशित धारावाहिक साहित्य ४१-६४

दीपावली की शुभ-कामनाएँ—

'काल-रात्रि' में मन्त्र-सिद्धि

तन्त्राचार्य जगदीशशरण बिलगइयाँ 'मधुप'
श्रीचामुण्डा-तन्त्र-संस्थान, दतिया (म० प्र०)

हमारा देश आदि काल से ही मन्त्र, तन्त्र, आध्यात्मिक साधना का प्रमुख केन्द्र रहा है, इसी से 'भा' = "प्रतिभा"—ईश्वर-प्रदत्त-शक्तिः प्रतिभा इति-कथ्यते अर्थात् प्रतिभा-सम्पन्न सदाचारी मनुष्यों का निवास होने से ही इसका नाम 'भारत-वर्ष' हुआ। इस राष्ट्र में तिथियों, व्रतों और पर्वों का सदैव विशिष्ट स्थान रहा है, ये मात्र अन्ध-विश्वास नहीं हैं, इनमें अनेक वैज्ञानिक तथ्य सन्निहित हैं, जिन्हें हमें आज उनकी जानकारी के अभाव में कपोल-कल्पित तथा पण्डितों के ढकोसले की संज्ञा देते हैं।

पर्वों के काल में विशिष्ट ब्रह्माण्डीय किरणों का पृथ्वी पर प्रपतन होता है। जो साधक साधना-रूपी क्रिया-भूमि को तदनुरूप बना लेता है, उसके शरीर में वे किरणें सूक्ष्म रूप से प्रवेश कर उसकी सर्वाङ्गीण भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति करती हैं। प्रकृति का यह शाश्वत नियम है कि छोटी वस्तु को बड़ी वस्तु आकर्षित करती है अर्थात् अपनी ओर खींचती है। 'मन्त्र' विशिष्ट-शक्ति-सम्पन्न किरणों तथा ध्वनियों से सुनियोजित वर्ण-योजना है, जिसे विधि-वत् गुरु द्वारा ग्रहण करने पर लौकिक और पारलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसीलिए 'मन्त्र-दीक्षा' विशिष्ट मास और विशिष्ट पर्व पर ही दी जाती है। इन पर्वों में ही कुछ "रात्रि-पर्व" समाहित हैं, जिन्हें हम—१ मोह-रात्रि, २ महा-रात्रि, ३ दारुण रात्रि, ४ शिव-रात्रि, ५ अचला रात्रि, ६ सिद्धि रात्रि, ७ विष्णु-रात्रि, ८ तारा-रात्रि, ९ वीर-रात्रि आदि नामों से जानते हैं। ये सभी रात्रि-पर्व साधकों को विशिष्ट शक्ति-सम्पन्न बनाते हैं। इनकी तिथियाँ, नक्षत्र, मासादि अलग-अलग हैं। इन्हीं में 'काल-रात्रि' भी एक महा-पर्व है, जिसका अपना प्रभाव और महत्व है।

तन्त्रों में तो 'काल-रात्रि' का विशेष उल्लेख है ही, संस्कृत और हिन्दी-साहित्य में भी अनेक जगह इसका वर्णन मिलता है। 'वाल्मीकि रामायण' में राक्षसों के विनाश के लिए सीता जी को 'काल-रात्रि' को उपमा से विभूषित किया गया—'**कालरात्रीति तां विद्धि, सर्व-लंका-विनाशिनीम्**।'

सीता सम्पूर्ण लंका के विनाश के लिए 'काल-रात्रि' के समान हैं। पूज्यपाद गोस्वामी जी ने भी '**सीता सीत निशा सम आई**' है कहा। (शेष पृष्ठ आवरण ३ पर)

क्०७

क्०७

सम्पादकीय

'श्रीछाया-पीठं' का प्रथम परिचय

'कौल-कल्पतरु चण्डी' की विगत ४५ वर्षों की शोधात्मक परम्परा के अनुसार प्रस्तुत अङ्क द्वारा तमिलनाडु के 'श्रीछाया-पीठं' का विवरण इस अङ्क में दिया जा रहा है। यह विवरण हिन्दी-जगत् में पहले पहल प्रकाशित हो रहा है, जो हमारे लिए गौरव की बात है। इस अद्वितीय 'शक्ति-पीठ' का परिचय हमें सर्व-प्रथम भुवनेश्वर (उड़ीसा) के साधक-प्रवर पण्डित श्री दुःखीश्याम पट्टनायक शास्त्री जी से मिला, जो संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् ही नहीं, अंग्रेजी, हिन्दी, उत्कल आदि अनेक भाषाओं में भी पारङ्गत हैं। उन्हीं के निःस्पृह एवं सक्रिय सहयोग के फल-स्वरूप उक्त 'पीठ' का यह रहस्योद्घाटन सम्भव हो सका है, जिसके लिए हम सभी उनके आभारी हैं।

शास्त्री जी से उक्त 'पीठ' का परिचय मिलने पर हमने हैदराबाद (आंध्र प्रदेश) के साधक-शिरोमणि पण्डित श्रीहनुमन्त राव जी से, जो विन्ध्य-पीठ के दर्शनार्थ आए हुए थे, अनुरोध किया कि वे 'पीठ' का दर्शन कर वहाँ का विवरण हमें भिजवाने की कृपा करें। श्रीराव जी सहर्ष प्रस्तुत हो गये। समय मिलते ही वे 'श्रीछाया-पीठं' गए और तत्सम्बन्धी विवरण हमें भेजा। इससे प्रोत्साहित होकर हमने 'चण्डी'-परिवार के श्रीपुण्यशील शर्मा से, जो कार्यवश मद्रास जा रहे थे, आग्रह किया कि वे भी वहाँ जायें और प्राप्त तथ्यों की पुष्टि करें। उन्होंने भी वहाँ पहुँचने का सौभाग्य-लाभ किया और बन्धुवर श्रीराव जी के समान ही 'पीठ'-सम्बन्धी सूचनायें भेजीं।

इसी बीच शास्त्री जी के परामर्श से हमने 'पीठ' के सचिव से पत्र-व्यवहार प्रारम्भ कर दिया था और हमारे आग्रह पर उन्होंने **'श्रीललिताम्बिका मन्दिर'** के प्रतिष्ठापक एवं **'श्रीललिता-महिला-समाजम्'** के संस्थापक वयोवृद्ध परम पूज्य गुरुदेव श्रीस्वामी अद्वयानन्दनाथ सरस्वतीजी महाराज की भव्य छवि के दर्शनार्थ उनके रङ्गीन चित्र की एक सहस्र प्रतियाँ भिजवाने की कृपा की, जो यहाँ संलग्न है। चित्र के प्राप्त होते ही हमने 'श्रीछाया-पीठं'-सम्बन्धी प्राप्त विवरण तुरन्त प्रकाशित करने का निश्चय किया।

समयाभाव और स्थानाभाव के कारण 'पीठ'-संबंधी अन्य अनेक चित्र और विवरण इस अङ्क में हम नहीं दे पाये हैं। आशा है कि वह सब भी 'पीठ' के सचिव के सहयोग से हम आगामी अङ्कों में प्रकाशित कर सकेंगे, जिससे 'चण्डी' के पाठक इस विलक्षण 'पीठ' के सम्बन्ध में सभी बातें जान सकेंगे और यथा-सुविधा वहाँ पहुँच कर जीवन का लाभ भी उठा सकेंगे।

'पीठ' की सचिव परम पूज्या श्रीललिताम्बा जी के हम हृदय से कृतज्ञ हैं। उन्होंने अपने कृपा-पूर्ण पत्रों एवं त्वरित कार्यवाही द्वारा हमें बड़ा प्रोत्साहन दिया है। श्रीछाया-पीठ' के सद्गुरु परम पूज्य श्रीस्वामी जी के अनुग्रह के बिना तो यह रहस्योद्घाटन सम्भव ही नहीं था। उसके लिए शब्दों में आभार प्रकट करना सम्भव ही नहीं है। आशा है, **श्रीछाया-पीठं'** के इस विवरण को पढ़कर और सद्गुरु श्रीस्वामी जी महाराज के पुण्य दर्शन प्राप्त कर इस शारदीय नवरात्र में हमारे पाठक बन्धु श्रीजगदम्बा की अहैतुकी दया की अनूठी अनुभूति से रोमाञ्चित हो उठेंगे। अस्तु।

श्रीछाया-पीठं का दुर्लभ इतिहास

परम पूज्या योगिनी श्री निर्मलाम्बा, सचिव 'श्री ललिता महिला समाजम्', तमिलनाडु

तान्त्रिक परम्परा के अनुसार देवी 'शक्ति' जब योग-निष्ठा में बैठी हुई थीं, तब उनकी 'छाया' के गिरने से भारत में 'श्रीछाया-पीठ' का निर्माण हुआ है। इस पीठ में ५० वें बीजाक्षर 'ळ' का उद्भव माना जाता है। इसीलिए यह स्थान परा सृष्टि-कारिणी शक्ति श्रीललिताम्बा के पूजन के लिए सर्व-श्रेष्ठ है।

उक्त 'श्रीछाया-पीठं' तमिलनाडु के तिरुइंगोइमलाइ पहाड़ी की तलहटी में अवस्थित है। तमिल भाषा के 'तिरु'-शब्द का अर्थ है 'श्री'। इसी प्रकार 'इंगोइ' = मधु-मक्षिका और 'मलाइ' = पर्वत। अतः उक्त पहाड़ी वस्तुतः पुरातन 'मक्षिका - गिरि' है, जो श्रीविद्या के प्रख्यात उपासक एवं प्रचारक महर्षि अगस्त्य का तपः-स्थल होने के कारण परम पवित्र है। जन-श्रुति है कि दो लिङ्गों की पूजा कर चुकने के बाद अन्त में मरकत से बने तीसरे लिङ्ग अर्थात् 'मरकताचलेश्वर' की पूजा करने के लिए जब अगस्त्य ऋषि यहाँ पहुँचे, तो उस समय मन्दिर बन्द हो चुका था किन्तु नियमानुसार एक ही दिन में तीनों लिङ्गों का पूजन करना था, अतः महर्षि अगस्त्य ने मधु-मक्षिका का रूप धारण किया और मन्दिर के द्वार के छिद्र से प्रवेश कर अपना अनुष्ठान पूरा किया। तभी से प्रसिद्धि है कि अगस्त्य जी अब भी मधु-मक्षिका के रूप में यहाँ निरन्तर भगवती की उपासना किया करते हैं। इसी कारण पहाड़ी का तमिल नामकरण उक्त आशय पर हुआ।

उक्त पौराणिक सन्दर्भ के सिवा इस स्थान की सनातन दिव्यता की पुष्टि एक अन्य ऐतिहासिक तथ्य से भी होती है। आध्यात्मिक जगत् श्रीभास्कर राय माखिन के शुभ नाम से सुपरिचित है। श्रीविद्योपासना के अधिकारी विद्वान् एवं सिद्ध साधक के रूप में आपकी विश्व-व्यापी ख्याति है। 'श्रीललिता-सहस्रनाम', 'वरिवस्या-रहस्यं' और 'योगिनी-हृदयं' पर आपके जो भाष्य उपलब्ध हैं, वे शाक्त-साधना के 'प्रस्थान-त्रयी' के रूप में उसी प्रकार सर्व-मान्य हैं, जिस प्रकार वैदिक उपासना के लिए उपनिषदों, ब्रह्म-सूत्रों और गीता को 'प्रस्थान-त्रयी' माना जाता है।

एक बार श्रीभास्कर राय ने अपने एक निस्सन्तान शिष्य को पुत्र-लाभ कराने के उद्देश्य से कावेरी नदी के तट पर अनुष्ठान प्रारम्भ किया। वृद्ध होते हुए भी आवश्यक कर्म-सम्पादन हेतु वे प्रति-दिन कुछ दूर स्थित नदी-तट पर जाने लगे। यह बात उनके शिष्यों को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने गुरुदेव से अनुरोध किया कि जब तक अनुष्ठान पूरा नहीं होता, उनके आवास के लिए नदी-तट पर एक अस्थायी कुटिया बना दी जाय, जिससे उन्हें जाने-आने का श्रम न हो किन्तु श्री भास्कर राय ने यह बात स्वीकार नहीं की। उन्होंने कहा कि 'यदि मुझे जाने-आने में असमर्थता प्रतीत हो, तो मैं नदी की धारा को

जगद्-गुरु स्वामी

श्रीअद्वयानन्दनाथ सरस्वती

श्रीस्वामी विद्यानन्द सरस्वती

सद्गुरु श्रीमद् स्वामी अद्वयानन्दनाथ सरस्वती जी महाराज पूर्वाश्रम में तंजवुर के परम्परागत जमीन्दार परिवार से सम्बद्ध थे। उसी परिवार में अध्यापक श्री मरुदमुथु पिल्लइ एक नैष्ठिक भगवद्भक्त और योगी थे। योग-साधना में उन्होंने इतनी सिद्धि प्राप्त कर ली थी कि पद्मासनस्थ ही वे अपने मृगचर्म के आसन से लगभग एक गज भूमि से ऊपर उठ जाते थे और वायु में उतराते से दिखाई देते थे। जो भी वे कहते या चाहते थे, वह हो जाता था। इससे लोग बड़े प्रभावित हो उठे। बहुतों ने उनसे मन्त्र-दीक्षा देने की याचना की। अधिकारी लोगों को उन्होंने दीक्षा भी दी।

एक बार वे वाराणसी की तीर्थ-यात्रा पर थे। उनके एक सह-यात्री का जल-पात्र किसी स्टेशन के पास के कुएँ में गिर गया। श्री पिल्लइ एक रस्सी के सहारे कुएँ में उसे निकालने को उतरे किन्तु

(पृष्ठ २ का शेषांश)

मोड़कर अपने घर के सामने से ही प्रवाहित कर सकता हूँ। वहाँ अस्थायी आवास बनाने की क्या आवश्यकता!'

शिष्य चुप रह गए किन्तु उनके मन की शङ्का दूर नहीं हुई। श्री भास्कर राय ने सोचा कि इस शङ्का से शिष्यों को अपने गुरुदेव के सामर्थ्य पर अविश्वास हो सकता है, जो उचित नहीं है। अतः उन्होंने धारा के प्रवाह को अपने घर की ओर मोड़ने का निश्चय किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने आवश्यक अनुष्ठान प्रारम्भ कर दिया। इस पर उनके समक्ष सूर्य-देव प्रकट हुए और वैसा करने से उन्हें रोका। उन्होंने कहा कि नदी की धारा के मुड़ने से जन-धन को क्षति पहुँच सकती है किन्तु श्री भास्कर राय अपने निश्चय पर अटल रहे और कहा कि कोई क्षति नहीं होने पाएगी। सूर्यदेव आश्वस्त नहीं हुए और उन्होंने कहा कि नदी की धारा नहीं मुड़ेगी। महान् तान्त्रिक साधक श्रीभास्कर राय यह सुनकर क्षुब्ध हो उठे और उन्होंने सूर्यदेव के अवांछित हस्तक्षेपके निवारण हेतु 'सूर्य-स्तम्भन' को क्रिया की, जिससे सूर्यदेव की गति रुक गई। फलतः श्रीभास्कर राय के इच्छानुसार कावेरी को अपनी धारा मोड़नी पड़ी और वह स्थान, जहाँ यह घटना घटी और श्रीभास्कर राय ने अपने शिष्य को पुत्र की प्राप्ति कराई, यही 'तिरुइंगोइमलाइ' नामक पहाड़ी है, जो महर्षि अगस्त्य की तपस्या से सिद्ध पीठ रहा है।

इस प्रकार यह पवित्र 'छाया-पीठ', जहाँ मरकत शिव-लिङ्ग प्रतिष्ठित है; कावेरी की पवित्र धारा बहती है; महर्षि अगस्त्य की तपोभूमि है और श्रीभास्कर राय की पुण्य स्मृति विद्यमान है; भगवती श्रीललिताम्बा की उपासना के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थान है।

इसी स्थान में सन् १९५४ में **'श्रीललिता महिला समाजम्'** नामक आश्रम की स्थापना परम पूज्य श्री स्वामी अद्वयानन्द जी सरस्वती द्वारा हुई है, जिसका विवरण पृष्ठ ९ पर द्रष्टव्य है।

दुर्भाग्य से रस्सी टूट गई और वे कुएँ में गिर पड़े। कुआँ गहरा था और ऊपर निकलने का कोई उपाय नहीं था। ट्रेन भी चल दी। बचने का कोई उपाय न देखकर श्री पिल्लइ ने काशी विश्वनाथ का स्मरण किया और एक तमिल प्रार्थना का उच्चारण किया, जिसका आशय है कि 'उनके बिना एक अणु भी नहीं हिल सकता....।' तत्काल ही कुएँ के ऊपर एक वयोवृद्ध स्वरूपवान् ब्राह्मण का आविर्भाव हुआ, जिनकी कान्ति सुवर्ण जैसी थी। उन्होंने एक रस्सी कुएँ में डाली और इनसे उसे पकड़ने को कहा। रस्सी खींच ली गई और ये ऊपर आ गए। देखा, तो ब्राह्मण और रस्सी दोनों गायब! श्री पिल्लइ ने अपनी प्राण-रक्षा हेतु भगवान् को धन्यवाद देते हुए पुनः स्तुति की। ट्रेन भी, जो चल चुकी थी, किसी गड़बड़ी के कारण रुक गई थी। और वह वहीं थी, मानों श्री पिल्लइ की राह देख रही हो! तीर्थ-यात्रा सुचारु रूप से सम्पन्न हो गई।

जिलाधीश एक अंग्रेज था। उसने चाहा कि पिल्लइ उसके बँगले में आकर उसे 'तमिल' पढ़ाया करें। श्री पिल्लइ ने बँगले पर जाना स्वीकार नहीं किया। उस युग में अंग्रेजों का देश में आतङ्क था और उनकी इच्छा की अवहेलना करना बड़े साहस का काम था। जिलाधीश ने श्री पिल्लइ के स्वाभिमान की प्रशंसा की और उनसे अनुरोध किया कि वे अपनी पसन्द का कोई 'तमिल'-शिक्षक उनके लिए नियुक्त कर दें। उस शिक्षक को अंग्रेज जिलाधीश से भू-सम्पत्ति तथा अन्य अनेक सुविधाएँ प्राप्त हुईं। इस घटना से स्पष्ट है कि धनादि भौतिक लाभों के प्रति पिल्लइ कोई आकर्षण नहीं अनुभव करते थे।

अध्यापक के रूप में श्री पिल्लइ ने अच्छी ख्याति अर्जित की थी। यहाँ तक कि जो विद्यालय पिछड़ा हुआ होता, उसे समुन्नत करने के लिए इन्हीं को भेजा जाता। इस प्रकार वे जब तंजवुर से लगभग १५ कि. मी. पश्चिम में स्थित वल्लभ ग्राम के विद्यालय में नियुक्त थे, तब १९ नवम्बर, १९१० को सिंह लग्न, आर्द्रा नक्षत्र में श्रीमती वदिवलगी अम्माल ने तृतीय पुत्र के रूप में गुरु जी को जन्म दिया। शिशु का नाम रखा गया 'सारङ्ग-पाणि'। 'सारङ्ग-राजन' नाम से भी उसे पुकारा जाता था। जन्म-नक्षत्रों के आधार पर पिता ने भविष्य-वाणी की कि यह शिशु निश्चित रूप से महान् ज्ञानी और महात्मा होगा।

श्रीपिल्लइ जीवन के अन्तिम दिनों में संन्यासी हो गए थे और एक स्थान से दूसरे स्थान में परिव्रजन किया करते थे। एक बार कुछ दिनों तक वे मद्रास में रहे, जहाँ संयोगवश उनकी भेंट अपने पुत्र सारङ्ग-राजन से हो गई, जो उस समय तक साधु हो चुके थे। सारंग-राजन ने उनसे कुछ और दिन वहाँ ठहरने का अनुरोध किया किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। जब भिक्षा के लिए सारंग-राजन बाहर निकले हुए थे, तभी वे वहाँ से चले गये और फिर उनके सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चला।

श्रीसारंग-राजन एक योग्य पिता के योग्य पुत्र प्रमाणित हुए। अपने महान् पिता के सभी उच्च गुणों और कर्मों को उन्होंने आत्मसात् कर लिया। भक्ति, योग, ध्यान, तप, निर्विकारिता और त्यागादि उनमें जीवन के प्रारम्भ से ही थे। ४ वर्ष की आयु में उन्हें अपने पिता से 'षडाधार-दीक्षा' प्राप्त हुई, जिसमें षट्-चक्रों और उनकी अधिष्ठातृ देवताओं का परिचय कराया जाता है। शैशवावस्था में ही उन्होंने जप-योग को बड़ी गम्भीरता से ग्रहण कर लिया। भगवान् सुब्रह्मण्य के वे परम भक्त थे, यद्यपि समय-समय पर विनायक, राम, कृष्ण, नटराज, नारायण, सरस्वती, हनुमान आदि की भी उपासना विशिष्ट उद्देश्यों से करते रहे और इन देवताओं की भी कृपा पाते रहे।

वैराग्य उनके रक्त में निहित था। अतः बाल्यावस्था में भी वे मठों और धार्मिक संस्थानों में बराबर जाते-आते रहे, जिससे वे विद्वानों के सम्पर्क में आए और संस्कृत तथा वेदान्त-सिद्धान्त-शास्त्रों

का अध्ययन करते रहे। भिक्षा-वृत्ति पर रहना उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं था। अतः उन्होंने जो भी काम मिला, उसे सहर्ष किया और इस प्रकार जो कुछ भी कमा पाते, उसमें निर्वाह करते हुए अध्ययन एवं साधना में निरन्तर लगे रहे। तंजवुर में उन्होंने कुछ समय तक अध्यापन का कार्य किया। फिर वे मद्रास, वाराणसी, ऋषिकेश आदि की यात्रा पर रहे। लौटकर पुनः तंजवुर में अध्यापन-कार्य कुछ वर्षों तक किया। इसी समय उनकी माँ ने उनका विवाह करना चाहा किन्तु उन्होंने अस्वीकार कर दिया और ब्रह्मचर्य एवं त्याग का ही जीवन बिताते रहे।

भगवान् सुब्रह्मण्य के भारत-स्थित सभी केन्द्रों का दर्शन कर वे श्रीलङ्का-स्थित द्वादश केन्द्र के दर्शनार्थ वहाँ गए। इस यात्रा में उन्हें अनेक बार भगवान् की सहायता चामत्कारिक ढंग से मिली। जाफना में उन्होंने ऋषीकेश के स्वामी शिवानन्द सरस्वती के शिष्य स्वामी सत्यानन्द सरस्वती से संन्यास की दीक्षा ग्रहण की।

वापस भारत में आकर वे कुछ वर्षों तक ऋषिकेश में शिवानन्द आश्रम में रहे, जहाँ उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर स्वामी शिवानन्द जी ने उन्हें **'गीता-वाचस्पति'** की उपाधि से विभूषित किया। साथ ही सन् १९४४ में उन्हें प्रेरित किया कि वे ऋषिकेश आश्रम जैसा एक अध्यात्म-केन्द्र तमिलनाडु में कावेरी नदी के तट पर स्थापित करें।

परम गुरु के निर्देशानुसार उन्होंने उक्त अध्यात्म-केन्द्र की जब कावेरी-तट पर स्थापना की, तब पता चला कि यहाँ तो **'छाया-पीठ'** है और अगस्त्य ऋषि तथा श्री भास्कर राय जैसी विभूतियों से यह स्थान सम्बद्ध रहा है। भगवती की प्रेरणा से कुछ वर्षों बाद वे आंध्र प्रदेश गए, तो वहाँ गोदावरी-जनपद के अमलापुरं तालुक में समनसा नामक एक छोटे से गाँव में उनकी भेंट अकस्मात् स्वामी भासुरानन्द जी से हुई, जिन्होंने उन्हें **श्रीविद्या** की साधना में दीक्षित किया। इन स्वामी जी ने अपने पिता श्री रामानन्द-नाथ जी से श्रीविद्या की दीक्षा प्राप्त की थी, जो अगस्त्य ऋषि की परम्परा के अनुयायी थे। बाद में वे पुनः स्वामी भासुरानन्दनाथ जी के दर्शनार्थ गए, किन्तु उनके दर्शन नहीं मिल सके, मानों इन्हें दीक्षा देने के लिये ही वे उस समय उन्हें मिले थे।

आंध्र प्रदेश से लौटकर अपने अध्यात्म केन्द्र में उन्होंने **'श्रीचक्र-पूजा'** को प्रधानता दी। भगवती की कृपा से उनके हाथ श्री ललितोपाख्यान आदि आ गये और सन् १९६३ में देवी ललिताम्बिका के मन्दिर का निर्माण किया गया। साथ ही **'श्रीचक्र-पूजा-परिपूर्ण महा-मेरु-पीठ'** की स्थापना की गई। तब से निरन्तर वहाँ नित्य-पूजायें और पूर्णिमा के दिनों में तथा दशहरा जैसे पर्व-दिवसों में विशेष पूजायें श्री ललिताम्बिका के प्रीत्यर्थ होती ही रहती हैं।

गुरुदेव स्वामी अद्वयानन्दनाथ सरस्वती जी महाराज ने अनेक धर्म-निष्ठ जिज्ञासुओं को श्रीविद्या की दीक्षा दी है। आपका लक्ष्य है कि योगियों और योगिनियों का एक ऐसा दल प्रस्तुत किया जाय, जो आजन्म ब्रह्मचारी और ब्रह्म-चारिणी रहकर समाज की हृदय से सेवा करें। वर्तमान समय में दस ब्रह्मचारिणी योगिनियाँ आश्रम में निवास करती हैं, जिन्होंने अपना जीवन श्रीविद्योपासना में समर्पित कर रखा है। गुरुदेव ने उन्हें कर्म-भक्ति-राजयोग-ज्ञान-योग और श्री ललिता-ब्रह्म की पूजा का अनूठा प्रशिक्षण दिया है।

उक्त योगिनियों की भक्ति, शास्त्रानुसार कर्म-काण्ड में दृढ़ निष्ठा और दर्शकों में भक्ति-भाव के उद्बोधन की क्षमता अतुलनीय है। उनके द्वारा की जानेवाली अनूठी पूजा का दर्शन अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है। पूर्णिमा के दिन जो **'नवावरण-पूजा'** वे सु-सम्पन्न करती हैं, वह सम्पूर्ण विस्तार के साथ होती है

'श्रीछाया-पीठं' के सद्गुरु

श्रीदुःखीश्याम पट्टनायक शास्त्री 'महा-मेधानन्दनाथ', एम० ए०, भुवनेश्वर (उड़ीसा)

'श्रीछाया-पीठं' में श्रीललिताम्बा की प्रतिमा के सम्मुख बृहदाकार 'मेरु-प्रस्तार' वाले श्री-यन्त्र की पूजा की जाती है। फलतः विविध देवताओं के लिए एक विशेष वृत्त में जो विशिष्ट स्थान निर्दिष्ट हैं, वे इस यन्त्र में स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं और 'नवावरण-पूजा' के समय पुष्प निश्चित स्थान पर सहज ही अर्पित किये जाते हैं। प्रत्येक पूर्णिमा के दिन और नवरात्र के दिनों में सद्गुरु परम पूज्य श्री १००८ श्री अद्वयानन्दनाथ सरस्वती के सुयोग्य मार्ग-दर्शन में प्रशिक्षित पवित्र कुमारी योगिनियों द्वारा चौंसठ उपचारों से पूर्ण विधि-पूर्वक उक्त पूजा सम्पन्न होती है।

गुरु जी के सम्बन्ध में मेरे अपने कुछ संस्मरण यहाँ उल्लेखनीय हैं। व्याकरण, अलङ्कार, धर्म-शास्त्र, ज्योतिष और तन्त्र के समुचित अध्ययन से संस्कृत के ज्ञाता होने से मुझे 'श्री-विद्या'-सम्बन्धी शास्त्र का अच्छा ज्ञान था। पुरी, काञ्ची, पुष्प-गिरि आदि के शङ्कराचार्यों से निकट सम्पर्क होने के फल-स्वरूप इस दिशा में आगे बढ़ने में बड़ी सहायता भी मिली। जब विधिवत् दीक्षा लेने का मेरा विचार हुआ, तब मैं काञ्ची के ज्येष्ठ जगद्गुरु की सेवा में पहुँचा। उन्होंने मुझे 'श्रीछाया-पीठं' के स्वामी जी के पास जाने का निर्देश किया क्योंकि उनके अनुसार वे ही पहले से निर्धारित मेरे गुरु थे।

मैंने 'श्रीछाया-पीठं' के आश्रम से पत्र-व्यवहार किया और एक दिन गुरुजी की सेवा में जा पहुँचा। उन्होंने पहली ही दृष्टि में मुझे स्वीकार कर लिया, मुझे ध्यान-योग के कक्ष में ले गए और

(पृष्ठ ५ का शेषांश)

और वैसी प्रभाव-शालिनी पूजा कहीं भी देखने को नहीं मिल सकती। इस प्रकार की गहरी भक्ति और सतत साधना के फल-स्वरूप उनमें अनेक सिद्धियों के दर्शन होते हैं। भक्त-जन प्रायः उनके चमत्कारों का अनुभव किया करते हैं। स्थानीय लोग उनके पास आकर **'तीर्थम्'** (मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित जल) और **'विभूति'** (पवित्र भस्म) की याचना किया ही करते हैं, जिनसे वे आधि-व्याधियों से सहज ही छुटकारा पा जाते हैं।

अनेक प्रकार के सामाजिक सेवा के कार्य योगिनियों द्वारा होते रहते हैं, जो 'श्रीललिता महिला समाजम्' शीर्षक लेख में पृष्ठ ६ पर वर्णित हैं।

गुरुदेव द्वारा तमिल भाषा में श्रीविद्योपासना के सम्बन्ध में अनेक उपयोगी पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं। ये पुस्तकें आश्रम के मुद्रणालय में ही मुद्रित हुई हैं, जिसका सञ्चालन उक्त योगिनियाँ ही करती हैं। पुस्तकों से स्वामी जी के उच्च कोटि के आध्यात्मिक ज्ञान एवं अनुभव का परिचय मिलता है।

वृद्धावस्था के आगमन के साथ ही गुरुदेव स्वामी जी अधिकाधिक अन्तर्मुखी—आत्मस्थ होते जा रहे हैं। कभी-कभी ही आप वार्तालाप या लोगों से साक्षात्कार करते हैं। केवल उन्हीं कुछ लोगों को आपके सान्निध्य का सौभाग्य मिलता है, जो वास्तव में आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए आतुर होते हैं। समय बीतने के साथ ही आप भौतिकता से परे होते जा रहे हैं। अधिकतर तक आप ब्रह्म से एकात्म ही दिखाई देते हैं। शिष्यों के आग्रह पर आप उपनिषदों, भगवद्-गीता, ब्रह्म-सूत्र और संस्कृत एवं तमिल के तद्-विषयक ग्रन्थों को समझाने के लिए कुछ समय दिया करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अखिल मानव समाज के लिए आप एक महान् ऋषि हैं और श्रीरामकृष्ण परमहंस, रमण महर्षि जैसी विभूतियों की परम्परा को आज भी अग्रसर कर रहे हैं।

मेरे भीतरी यौगिक स्पन्दनों का परीक्षण किया, आध्यात्मिक वार्ता को तथा श्रीविद्या की दीक्षा देने की कृपा की। अगली बार में उन्होंने मुझे पूर्णाभिषेक द्वारा कृत-कृत्य कर दिया। उस दिन मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि शुद्ध घृत, शुद्ध मधु, पुष्प, कुशादि की निरन्तर आहुतियों से होम प्रारम्भ किया गया, और अन्त में यज्ञीय अग्नि में नारिकेल के सहित एक पूर्ण 'पट्ट-वस्त्र' छोड़ दिया गया! मेरे सद्गुरु, जो देवी को उनके पूर्ण स्वरूप में देखते हैं और उनकी उपस्थिति को अनुभव करते हैं, पूर्ण 'पट्ट-वस्त्र' दिए बिना यज्ञ कैसे कर सकते हैं! आधुनिक संशयों से त्रस्त जो लोग 'यज्ञ' को अप-व्यय समझते हैं और **'वस्त्राभावे सूत्रं दद्यात्'** के अनुसार वस्त्र के स्थान में 'सूत' के टुकड़े से काम चलाते हैं, वे गुरु जी की निष्ठा को कैसे हृदयङ्गम कर सकते हैं!

पूर्णिमा को होनेवाली **'चक्र-पूजा'** में भी उक्त विशेषता के दर्शन होते हैं। 'श्री-यन्त्र' को पूर्ण रूप से शुद्ध घृत, शुद्ध मधु, शुद्ध दुग्ध, शुद्ध दधि आदि से सिक्त किया जाता है, यहाँ तक कि एक छोटी-सी धारा मण्डप में बह निकलती है। उस निष्ठा-पूर्ण पूजा का दर्शन कर पाना वास्तव में परम सौभाग्य की ही बात है। भक्त दर्शकों के हृदय भक्ति-भावना से अभिभूत हो उठते हैं।

जगद्गुरु स्वामी जी संस्कृत के महान् विद्वान् हैं। विचार-विमर्श के प्रसङ्ग में मैंने सदा अनुभव किया है कि उनकी गूढ़ वार्ता रहस्यों का उद्घाटन करती है। उदाहरण के लिए एक बार मैंने पूछा 'पञ्च-ब्रह्म को पञ्च-प्रेत कैसे कहते हैं?'

गुरु जी ने समाधान किया—'ब्रह्मा, विष्णु, शिव, रुद्र चार पाद हैं और सदाशिव सिंहासन के ऊपरी तल-रूप हैं। ये ही पञ्च-ब्रह्म हैं। 'ब्रह्मन्' शब्द का मूल है 'बृहन्' = बढ़ाना अर्थात् वह जो सृजन करे। उक्त पाँचों ब्रह्म हैं क्योंकि वे क्रमशः १ सृष्टि (सृजन), स्थिति (पालन), ३ सहार (नाशन), ४ तिरोधान (नाश द्वारा छिपाना) और ५ अनुग्रह (कृपा-पूर्ण विकास) करते हैं किन्तु साथ ही ये 'पञ्च-प्रेत' भी कहे गए हैं। 'प्रेत' = प्र + इत। 'प्र' अर्थात् अच्छा तरह, 'इत' अर्थात् गया हुआ। इस प्रकार आशय यह है कि जो अच्छी तरह गया हुआ है अर्थात् 'मृत' (मरा हुआ) है। देवी 'परमात्मा' हैं, जो 'पञ्च-ब्रह्म'-स्वरूप सिंहासन पर विराजमाना हैं। देवी पञ्च-ब्रह्म के ऊपर हैं। जिस प्रकार आत्मा के बाहर होने से शरीर निर्जीव या 'प्रेत'-वत् हो जाता है, उसी प्रकार देवी की वैसी स्थिति में पञ्च-ब्रह्म पञ्च-प्रेत ही होंगे।'

गुरु जी जैसे सिद्ध सन्तों की भावना सदा सत्य होती है। इस सम्बन्ध में एक घटना उल्लेखनीय है। श्रीविद्योपासक होने के कारण मेरी इच्छा थी कि मैं श्रीभास्कर राय से सम्बद्ध पवित्र स्थान का दर्शन प्राप्त करूँ, जो 'भास्कर राय-पुरम्' नाम से प्रसिद्ध है और कहीं तंजवुर के पास है। उसका ठीक-ठीक पता जानने के लिए मैंने आश्रम की सेक्रेटरी श्री निर्मलाम्बा जी को लिखा कि वे गुरु जी से पूछकर मुझे सूचित करें क्योंकि मैं वामाचार से होनेवाली पूजा के सम्बन्ध में उत्सुक हूँ। उन्होंने मुझे उत्तर दिया कि गुरु जी यह ठीक नहीं समझते कि वामाचार-पूजा के दर्शनार्थ वहाँ जाया जाय।

दिसम्बर १९८३ में जब मैं आश्रम में गया, तो श्रीमुरुगेशन (डिप्टी मैनेजर, भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स) ने मुझे अतिथि-रूप में त्रिची आमन्त्रित किया। संयोग-वश उन्होंने उल्लेख किया कि उनके एक मित्र भास्करराय-पुरम् के शिष्य हैं। मेरे आग्रह पर वे उन मित्र के पास गए और उनसे अनुरोध किया कि वे मुझ उक्त स्थान में घुमा लायें किन्तु उक्त शिष्य ने अपने गुरु की अनुमति बिना मुझे वहाँ ले जाना स्वीकार नहीं किया। मुझे यह ज्ञात नहीं हो सका कि किस कारण से लोग भास्करराय-पुरम् नहीं जा पाते। श्री मुरुगेशन ने भी अनुभव किया कि उनके मित्र मुझे वहाँ नहीं ले जायँगे। फलतः हम दोनों ने ही अगले दिन वहाँ जाने का निश्चय किया।

भास्करराय-पुरम् तंजवुर के निकट किसी भीतरी स्थान में था और मुझे वहाँ की स्थानीय बोली का ज्ञान नहीं था, अतः मैं चाहता था कि कोई मित्र मेरे साथ वहाँ तक चले। अपने आश्वासन के अनुसार श्री मुरगेशन किसी आवश्यक कार्य-वश साथ नहीं चल सके। अतः मैं एक उड़िया ज्योतिषी मित्र श्री पुजारी के साथ तंजवर से निश्चित दिन पर चला। उस दिन धुंआधार वर्षा हो रही थी। भास्कर-राय-पुरम् को प्रस्थान करने के पूर्व मैंने श्रीपुजारी से कहा कि 'हम लोग इस स्थान को देख नहीं पाएँगे।' उन्होंने कारण पूछा किन्तु मैंने यात्रा के समाप्त होने के पूर्व कुछ कहना उचित नहीं समझा। हमने अनेक लोगों से पूछ-ताछ की किन्तु कोई भी मार्ग-निर्देश किसी से नहीं मिल सका। लाचार होकर हमें लौट आना पड़ा। तब मैंने श्रीपुजारी को बताया कि मेरे गुरुजी ने भास्करराय-पुरम् जाने के मेरे विचार को पसन्द नहीं किया था। फिर मैं वहाँ कैसे पहुँच सकता था!

जून १९८४ में जब मैं आश्रम जानेवाला था, तो एक मित्र श्रीविश्वनाथन ने, जो ओवरसीज बैंक के मैनेजर हैं और श्रीविद्योपासक भी हैं, मुझे भास्करराय-पुरम् का पता बताया। साथ ही तंजवुर के अपने कुछ मित्रों को भी लिखा कि वे मुझे वहाँ पहुंचने में सहायता करें किन्तु जब मैं भुवनेश्वर से चला, तो श्रीविश्वनाथन अपने कनिष्ठ भ्राता की रुग्णता से परेशान थे, जिससे मैंने उन्हें कष्ट देना उचित नहीं समझा। फिर तंजवुर के उनके मित्रों से सहायता मिलने की आशा तो थी ही।

१२ जून, १९८४ को मैं आश्रम पहुँचा और १३ जून को पूर्णिमा-पूजा में सम्मिलित हुआ। श्री मुरुगेशन ने स्वयं ही एक व्यक्ति को आश्रम भेजा और मुझे सूचित किया कि वह व्यक्ति भास्कर-राय-पुरम् हो आया है और मुझे भी वहाँ पहुँचा देगा। १४ जून को संक्राति-पूजा थी, अतः मैंने उस व्यक्ति को उसी दिन २ बजे दिन में आने को कहा किन्तु पता नहीं क्यों, वह उस दिन नहीं आ पाया और मैं अपने दो शिष्यों के ही साथ तंजवर पहुँचा और वहाँ के मित्रों से मिला। उन्होंने भास्करराय-पुरम् तक पहुँचाने का आश्वासन दिया किन्तु तंजवुर के भीतरी भागों को अच्छी तरह जाननेवाले वे मित्र भी 'पुरम्' का पता नहीं लगा पाए।

इस प्रकार इतने सारे प्रयासों के बाद भी, मैं भास्करराय-पुरम् नहीं ही पहुँच पाया। इस घटना से पता चलता है कि एक सिद्ध साधक की इच्छा या उसके शब्द में कितनी सत्यता होती है।

कितनी ही घटनायें हैं, जिनसे गुरुदेव पूज्य श्रीस्वामी अद्वयानन्दनाथ सरस्वती जी महाराज की महती आध्यात्मिक शक्ति का बोध होता है। वस्तुतः आप भारत के आध्यात्मिक जगत् के देदीप्यमान सूर्य के समान हैं। मेरी हार्दिक कामना है कि देश-वासी आपकी उदार कृपा और आशीर्वाद से सब प्रकार कृतार्थ हों।

श्री ललिता महिला समाजम्

तमिलनाड् के तिरुचिर-पल्ली जनपद में तिरुइंगोइमलाइ ग्राम में श्रीमरकत अचलेश्वर पर्वत-मन्दिर के पाद-स्थल में तिरुचिर-पल्ली से ४० कि० मी० दूर तिरुचि-सलेम उच्च मार्ग पर उक्त 'समाजम्' अवस्थित है। ऋषिकेश के प्रसिद्ध स्वामी शिवानन्द सरस्वती के निर्देश पर 'समाजम्' के संस्थापक गुरुदेव श्री स्वामी अद्वयानन्दनाथ सरस्वती ने उक्त स्थान का चयन किया था।

वैदिक संस्कृत में ५१ बीजाक्षर हैं। ये अक्षर सृष्टि-काल में सूक्ष्म रूप से मानव शरीर में और स्थूल रूप से पृथ्वी में विद्यमान थे। इनमें से ५०वाँ बीजाक्षर 'ळ' उक्त तिरुइंगोइमलाइ अर्थात् 'ललिताम्बिका शक्ति-पीठ' में उदित हुआ है। तिरुइंगोइमलाइ 'कामकोटि पीठ' का क्षेत्र है। यहाँ 'श्रीचक्र यन्त्र' पवित्र मण्डप में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार यह 'श्रीचक्रराज-परिपूर्ण महा-मेरु-पीठम्' है, जो श्रीललिता-ब्रह्म का परम धाम है। यहाँ महर्षि अगस्त्य मधु-मक्षिका के रूप में अब भी तप-निरत हैं, जिसका प्रमाण है इस स्थान का नाम—'इंगोइमलाइ' अर्थात् 'मक्षिका-गिरि'। यह 'योगिनी-शक्ति-पीठ' है क्योंकि यहाँ परा योगिनी श्रीललिता-ब्रह्म की पूजा अगस्त्य ऋषि की परम्परावाली योगिनियों (नित्य-ब्रह्मचारिणियों) द्वारा की जाती है।

'श्रीललिता महिला समाजम्' द्वारा जाति या धर्म के भेद-भाव के बिना सभी के सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए विविध कार्य किए जाते हैं। 'समाजम्' की मुख्य विशेषता यह है कि इसके द्वारा उपनिषदों, श्रीमद्-भगवद्-गीता, पातंजलि योग-सूत्रों और अन्य शास्त्रों में निहित प्राचीन शिक्षाओं के माध्यम से अच्छे चरित्र और पारस्परिक सद्भाव का निर्माण किया जाता है। 'परब्रह्म श्रीललिताम्बिका' के मन्दिर में होनेवाली पूजा से अध्यात्म की उपयोगिता और दैनिक आचरण की पवित्रता का व्यावहारिक रूप प्रत्यक्ष दिखाया जाता है। पूजा करने में जिस भक्ति-भाव और शास्त्रीय विधि के पालन की तत्परता देखने को मिलती है, वह अद्वितीय है। उस उद्बोधक पूजा के दर्शन मात्र से लोगों को चरित्र-निर्माण की अनुपम प्रेरणा मिलती है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। इसका मूल कारण यह है कि उक्त पूजा ऐसी योगिनियों के एक समूह द्वारा की जाती है, जो आजीवन ब्रह्म-चारिणी हैं और जिनके जीवन का उद्देश्य ही स्वयं पर-ब्रह्म का साक्षात्कार करना और दूसरों को भी उसी दिशा में सभी सम्भव सहायता देना है। 'समाजम्' द्वारा संचालित निम्न कार्य-कलापों से उसकी बहुमुखी राष्ट्र-सेवा का परिचय मिलता है—

(१) **योग-संस्कृति (हठ-राज-योग-विज्ञान एकेडमी)** : देश और विदेश से महिलायें आकर इस एकेडमी में कुछ दिनों या एक-दो मास के प्रशिक्षण द्वारा योगासन, प्राणायाम और राज-योग जैसे विषयों का ज्ञान प्राप्त करती हैं।

(२) **अनाथ बालिका-गृह** : लगभग ५० अनाथ बच्चियाँ इस गृह में आश्रय, भोजन, चिकित्सा, शिक्षा आदि सुविधाओं का लाभ उठा रही हैं।

(३) **विस्थापितों का पुनर्वास** : श्रीलङ्का से विस्थापितों के पुनर्वास हेतु 'समाजम्' द्वारा यथा-सम्भव सभी प्रयास किए जाते हैं।

(४) **देवावाहन, पूजन एवं ध्यान** : परा-शक्ति श्रीललिताम्बिका देवी का मन्दिर यहाँ है। पूजा-कर्म और दैनिक स्तवन कुमारी योगिनियाँ परा भक्ति के साथ करती हैं। प्राचीन परम्परा और आधुनिक

वज्ञानिक संस्कृति पर आधारित पूजा-पद्धति अनूठी है, जिसके द्वारा सर्व-व्यापिनी शक्ति का आवाहन किया जाता है। वही शक्ति मानव शरीर की सुषुम्णा नाड़ो में स्थित मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि नौ शक्ति-केन्द्रों में विराजमाना है।

भगवान् वेदव्यास कृत १८ पुराणों में ब्रह्माण्ड-पुराण अन्तिम है। उसके अन्तिम भाग में 'श्री-ललितोपाख्यान' है। उस उपाख्यान में ६४० कोटि शक्ति-रश्मियों का उल्लेख है, जो श्रीललिता-ब्रह्म से उद्भूत होकर उन्हीं को निरन्तर चारों ओर से वृत्तात्मक रूपों में घेरे रहती हैं। इसी के फल-स्वरूप विश्व की सभो छोटी-बड़ी गतियाँ एवं क्रियायें सम्पन्न होती रहती हैं। किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह सिद्धान्त है कि हम जहाँ स्थित हैं, वहीं से प्रारम्भ करें। इसीलिए यहाँ जो पूजा होती है, वह 'नवा-वरण-पूजा' कहलाती है।

'समाजम्' के भवन में एक 'चित्र-शाला' है, जिसमें उक्त शक्ति-केन्द्रों और विविध शक्तियों के चित्र प्रदर्शित हैं।

(५) अनाथ बच्चियों के लिए प्रारम्भिक पाठशाला

(६) सचिव-प्रशिक्षण कार्यक्रम—१८ से ३० वर्ष की आयुवाली अनाथ महिलाओं के लिए।

उक्त विविध गति-विधियों के लिए 'समाजम्' मुख्यतः जनता के दान पर निर्भर है। 'अनाथ बाल-गृह' का केवल आंशिक व्यय-भार शासन अपने समाज-कल्याण विभाग द्वारा वहन करता है। 'समाजम्' के पास लगभग १४ एकड़ भूमि है, जिसमें सदस्यों द्वारा खेती कर अन्न, शाक और पूजार्थ फूलों की व्यवस्था करने का प्रयास किया जाता है किन्तु पहाड़ी की ढाल पर उक्त भू-भाग के होने से कृषि-कार्य बहुत कठिन और व्यय-साध्य है। सभी योगिनियाँ अवैतनिक रूप से कार्य करती हैं। वे आजीवन मानद कार्य-कर्त्रियाँ हैं।

विस्तृत सूचना हेतु जिज्ञासु बन्धु निम्न पते से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं—

सेक्रेटरी, श्रीललिता महिला समाजम्, तिरुइंगोइमलाइ पो० आ०, मनमेडु एस० ओ, मुसिरि टी० के०, तिरुची डिस्ट्रिक्ट, तमिलनाडु (दक्षिण भारत)—६२१२०६

नए प्रकाशन

१	**परमानन्द तन्त्रम् : मूलमात्र, सौभाग्यानन्द-सन्दोह संस्कृत टीका पृ० ८०० ७६-००**	
२	**नित्या-षोडशिकार्णव : मूल-मात्र, ऋजु-विमर्शिनो एवं अर्थ-रत्नावली टीका ७६-००**	
३	**हिन्दी मन्त्रमहार्णव देव-खण्ड १४०), देवी-खण्ड १४०), मिश्र-खण्ड**	**१००-००**
		१००-००
४	**वृहत् तन्त्रसार : मूलमात्र, पृष्ठ ५१०**	
		१५-००
५	**श्री हुनमत् उपासना : सङ्कलन-कर्त्ता—श्री राधारमण दुर्वार**	
		१५-००
६	**ज्योतिष भाव-दर्शन**	

गुरु गोता…५), भगवान् गोपीनाथ जी कश्मीर ५) निगमागम-समन्वय ३०) सप्तशती सर्वस्वम् ६०), श्रीगुरु-तत्वम् एवं पादुका-पञ्चकम् २०,

दक्षिण-भारत में दुर्गा-पूजा

श्रीकृष्ण पिच्चुमणि अयङ्गार, श्रीरङ्गम् (तमिलनाडु)

दक्षिण-भारत में सभी हिन्दुओं के घरों में प्रतिदिन दुर्गा-पूजा होती है। अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार यह पूजा की जाती है। तमिलनाडु के वर्तमान मुख्य मन्त्री श्री एम० जी० रामचन्द्रन् भी 'मूकाम्बिका दुर्गा' के भक्त हैं। केरल में दुर्गा माता के कई क्षेत्र हैं। विशेषतः नम्बूदिरि ब्राह्मण-वर्ग इस पूजा में प्रवीण हैं। आन्ध्र व कर्नाटक प्रदेश में भी हर गाँव में दुर्गा के मन्दिर पाये जाते हैं। कर्नाटक की पुरानी राजधानी मैसूर अर्थात् 'महिषासुर-मर्दिनी पुरी' में चामुण्डा देवी का विशाल मन्दिर है। अस्तु।

अब हम इस बात पर विचार करें कि दक्षिण भारत के शाक्त - गृहों में दुर्गा-सप्तशती का पाठ एवं दुर्गा - पूजा का विधान किस प्रकार होता है। सर्व-प्रथम मार्कण्डेय महर्षि तथा अपने गुरु की वन्दना होती है। तदनन्तर चौदह मनुओं की नियमानुसार पूजा होती है।

सभी साधक जानते हैं कि— १ स्वायम्भुव, २ स्वारोचिष, ३ उत्तम, ४ तामस, ५ रैवत और ६ चाक्षुष—इन छः मनुओं का युग बीत चुका है। अब 'वैवस्वत मन्वन्तर' चल रहा है। जो साधक नियमित रूप से दुर्गा-सप्तशती का पाठ करते हैं, श्री मार्कण्डेय महर्षि की कृपा से 'वैवस्वत' अर्थात् यम के पाश से मुक्ति पाकर अपने को 'सूर्य-सावर्णि मनु' के युग में ले जाते हैं, यही साधक का परम लक्ष्य है। इसीलिए **'सावर्णिः सूर्य-तनयः'** से प्रारम्भ करके **'सूर्यात् जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः'** तक दुर्गा का माहात्म्य प्रस्तुत किया गया है।

'सूर्य-सावर्णि' के बाद—१ दक्ष-सावर्णि, २ ब्रह्म-सावर्णि, ३ पौष-सावर्णि (धर्म-सावर्णि), ४ रुद्र सावर्णि, ५ रौच्य-सावर्णि (देव-सावर्णि) तथा ६ इन्द्र-सावर्णि—इन मनुओं की भी पूजा होती है। इन मनुओं की पूजा से 'अनात्मा' अर्थात् देह में जो आत्म-बुद्धि है, वह नष्ट हो जाती है और साधक की दृष्टि विशाल हो जाती है, वह अपनी संकुचित सीमा से बाहर आकर अपने आदि - पुरुषों के बारे में सोचने लगता है। इसलिए साधक को चिरञ्जीवी मार्कण्डेय महर्षि के शुभ नाम-स्मरण के बाद चौदह मनुओं के शुभ नामों का भी स्मरण करना अनिवार्य है। तभी साधक के विधि-वत् प्राणायाम करने के बाद दुर्गा सप्तशती के पाठ एवं पूजा के लिए उसका **'वैवस्वत-मन्वन्तरे'** सङ्कल्प सार्थक हो सकता है।

यह तो सभी साधक जानते हैं कि क्षिप्र प्रसाद देनेवाले मन्त्रों में श्रीदुर्गा का मन्त्र सर्वोत्तम है। अतः यह मन्त्र सभी को सिद्ध न हो जाये, इस विचार से ब्रह्मा, वशिष्ठ, विश्वामित्र ऋषियों के शाप भी हुए हैं, जिनके विमोचन के लिए पहले निम्न प्रकार का विनियोग पढ़ना चाहिये—

ॐ अस्य श्रीचण्डिकायाः ब्रह्म-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शाप-विमोचन-मन्त्रस्य वशिष्ठ-नारद-सम्वाद-सामवेदाधिपति-ब्रह्मणः ऋषिः। सर्वैश्वर्य-कारिणी श्रीदुर्गा शक्तिः। चरित-त्रयं बीजं। ह्रीं शक्तिः। त्रिगुणात्म स्वरूपा-चण्डिका-शाप विमुक्तौ मम सङ्कल्पित-कार्य-सिद्धयर्थे जपे विनियोगः।

इस विनियोग के बाद अधिकांश साधक श्रीदुर्गा-सप्तशती के पञ्चम अध्याय के **'देवा ऊचुः—नमो देव्यै महा-देव्यै शिवायै सततं नमः'** से प्रारम्भ करके **'भक्ति-विनम्र-मूर्तिभिः'** तक का पाठ करते हैं।

कुछ साधक लोग निम्न मन्त्रों का जप करते हैं। प्रत्येक मन्त्र के अन्त में **'ब्रह्म-वशिष्ठ-विश्वामित्र-शापेभ्यः विमुक्ता भव'**—इस पद का उच्चारण करना चाहिये। यथा—

(१) ॐ ह्रीं रीं रेतः-स्वरूपिण्यै मधु-कैटभ-मर्दिन्यै ब्रह्म-वशिष्ठ-विश्वामित्र - शापेभ्यः विमुक्ता भव। (२) ॐ श्रीं बुद्धि-स्वरूपिण्यै महिषासुर-सैन्य-नाशिन्यै०। (३) ॐ रं रक्त - स्वरूपिण्यै महिषासुर-मर्दिन्यै०। (४) ॐ क्षुं क्षुधा - स्वरूपिण्यै देव-वन्दितायै०। (५) ॐ छां छाया - स्वरूपिण्यै दूत-सम्वादिन्यै०। (६) ॐ शं शक्ति-स्वरूपिण्यै धूम्र-लोचन-घातिन्यै०। (७) ॐ तृं तृषा-स्वरूपिण्यै चण्ड-मुण्ड-वध-कारिण्यै०। (८) ॐ क्षां क्षान्ति-स्वरूपिण्यै रक्त-बीज-वध-कारिण्यै०। (९) ॐ जां जाति - स्वरूपिण्यै निशुम्भ-वध-कारिण्यै०। (१०) ॐ लं लज्जा-स्वरूपिण्यै शुम्भ-वध-कारिण्यै०। (११) ॐ शं शान्ति-स्वरूपिण्यै देव-स्तुत्यै०। (१२) ॐ श्रं श्रद्धा-स्वरूपिण्यै सकल-फल-दायिन्यै०। (१३) ॐ कां कान्ति-स्वरूपिण्यै राज्य-वर-प्रदायै०। (१४) ॐ मां मातृ-स्वरूपिण्यै अनर्गल-महिम-सहितायै०। (१५) ॐ ह्रीं श्रीं दुं दुर्गायै सर्वैश्वर्य-कारिण्यै०। (१६) ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः शिवायै अभेद्य-कवच-स्वरूपिण्यै०। (१७) ॐ क्रीं काल्यै कालि ह्रीं फट् स्वाहायै ऋग्वेद-स्वरूपिण्यै०। (८) ॐ ऐं ह्रीं क्लीं महाकाली-महा-लक्ष्मी-महा-सरस्वती-स्वरूपिण्यै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गा-देव्यै नमः।

कुछ साधक निम्न-लिखित एक ही मन्त्र का आदि और अन्त में सात बार जप करके शापोद्धार करते हैं—ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डिका-देव्यै शाप-नाशानुग्रहं कुरु कुरु स्वाहा।

अन्य कुछ साधक सप्तशती के १३ : १, १२ : २, ११ : ३, १० : ४, ९ : ५, ८ : ६—इस क्रम से अध्यायों का पाठ करते हैं तथा अन्त में सातवें अध्याय का दो बार पाठ करते हैं।

जो भी हो, महर्षि-वन्दना, मनु - पूजा एवं शापोद्धार तथा उत्कीलन प्रायः सभी साधक लोग करते हैं।

उत्कीलन के भी कई मन्त्र हैं। सबसे प्रसिद्ध मन्त्र है—ॐ श्रीं श्रीं क्लीं हूं ओं ऐं क्षोभय मोहय उत्कीलय उत्कीलय ठं ठं।

शापोद्धार एवं उत्कीलन से आत्मा, जगत् और ब्रह्म का एकीकरण होता है अर्थात् साम्यावस्था का दर्शन मिलता है, वही मुक्ति है।

दुर्गा-पूजा के प्रारम्भ में भगवती दुर्गा के वैष्णव-रूप का ध्यान किया जाता है। अतः चिदम्बर-संहिता के अनुसार पहले अर्गला का ही पाठ किया जाता है, बाद में कीलक और अन्त में कवच का। दक्षिण-भारत के तमिलनाडु में इसी विधान की महत्ता का प्रदर्शक 'चिदम्बरम्' नामक नगर है, जहाँ शिव - शक्ति के मिलन का दिग्दर्शक श्रीनटराज का दिव्य मन्दिर है। संस्कृत-व्याकरण के अष्टाध्यायी के रचयिता महर्षि पाणिनि एवं दुर्गा देवी के अन्तरङ्ग उपासक महर्षि कात्यायन को इसी क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त हुई, ऐसी किंवदन्ती है।

उक्त क्रम से कवच द्वारा आत्म-रक्षा कर दुर्गा का आवाहन आदि करना चाहिए। 'कवच' में कुछ साधक लोग 'वन-दुर्गा' को प्रधानता देते हैं। उनके अनुसार नौ दुर्गाओं के नाम इस प्रकार हैं—

प्रथमा वन-दुर्गेति, द्वितीया शूलिनी मता। तृतीया जात-वेदा च, चतुर्थी शान्तिरिष्यते। पञ्चमी शबरी चैव, षष्ठी ज्वालेति गीयते। सप्तमी लवणा चेति, अष्टम्यां आसुरी मता। नवमी दीप-दुर्गेति, नव-दुर्गाः प्रकीर्तिताः॥

परन्तु उक्त नव-दुर्गाओं की पूजा का विधान भिन्न-भिन्न है। अतः सप्तशती के साधक इन दुर्गाओं को नहीं मानते।

जैसा कि हमने प्रारम्भ में सूचित किया है, मनुओं के विधानानुसार ही दुर्गा - पूजा करनी चाहिये। इस वर्ष सौर-सिंह मास २५वीं तिथि तदनुसार १० सितम्बर १९८६, बुधवार शुक्ला सप्तमी

अनुराधा-नक्षत्र में 'रुद्र-सावर्णि' मन्वादि का प्रारम्भ होता है। अतः नवरात्र-पूजा का आरम्भ उसी दिन हो जायेगा, तथा पूजा की पूर्णता सौर कन्या मास २५वीं तिथि तदनुसार ११ अक्तूबर १९८६, शनिवार—शुक्ला नवमी-उत्तराषाढ़ नक्षत्र 'स्वारोचिष मन्वादि' में होगी। इस प्रकार दक्षिण के हों या उत्तर के—सभी साधकों को 'मन्वादि-काल' का ज्ञान होना आवश्यक है।

सभी शाक्तों को काल-पुरुष की गति तथा अपनी प्राण-शक्ति की गति जानते हुये कर्म करते रहना चाहिये, परन्तु फल की कामना न हो, यही क्रम मोक्ष-प्रद है।

नमो देव्यै महा-देव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्।'

यही देवों की प्रार्थना है। हाँ, भू-देव शाक्तों की प्रार्थना है। कर्मेन्द्रियों को वश में करने से ज्ञानेन्द्रियों का विकास होता है। कर्मेन्द्रियों को वश में लाने के लिए काल की गति जानना आवश्यक है।

सौर सिंह मास एवं सौर कन्या मास—ये दोनों मास दुर्गा माता की पूजा के लिए श्रेष्ठ हैं। अन्य मासों में दिव्य साधक कैसे दुर्गा-पूजा करते हैं—यह ज्ञातव्य है। सभी दिनों में राहु-काल की घड़ियों में साधना करनी चाहिये। प्राण व अपान की गति रोकते हुये साम्यावस्था में अपनी शक्ति को लाना चाहिये, जिससे देवी के दर्शन सुलभ हों। देवी की गायत्री का १०८ बार जप करने से साधक की शक्ति स्वतः साम्यावस्था में आ जाती है। ध्यान सिंहासन-गता देवी का रहे। यथा —

ॐ सिंहस्था शशि-शेखरा मरकत-प्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः,
शङ्खं चक्र-धनुः-शरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गद-हार-कङ्कण - रणत्-काञ्ची - रणन्नूपुरा,
दुर्गा दुर्गति-हारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्-कुण्डला॥

इस उपासना में षडङ्गों का न्यास मुख्य है। ध्यान के बाद गुरु से आज्ञा लेकर पूजा, जप और होम करना चाहिये। पूजा हमेशा दिन में राहु-काल में ही करनी चाहिये। रात के समय राहु-काल नहीं होता। दुर्गा देवी स्वयं अग्नि-स्वरूपा हैं। अतः सूर्य की किरणों के साथ उनका सम्बन्ध 'नित्या' के रूप में जुड़ा हुआ है। हाँ, पशु और वीर साधकों के लिए रात में भी दुर्गा की पूजा का विधान है। उनके लिए रात की निम्न घड़ियाँ निर्दिष्ट हैं—

रवि : छः से साढ़े सात तक। सोम : तीन से साढ़े चार तक। मङ्गल : डेढ़ से तीन तक। बुध : बारह से डेढ़ तक। गुरु : साढ़े दस से बारह तक। शुक्र : नौ से साढ़े दस तक। शनि : साढ़े सात से नौ तक।

पुत्र, धन, नये साधन, अच्छा वर अथवा वधू आदि सभी लौकिक सुखों की प्राप्ति के लिए रात की घड़ी श्रेष्ठ मानी गई है।

चाहे पूजा दिन में हो या रात में, नव दुर्गाओं के शुभ नाम-स्मरण के बाद आठ वसु, नौ निधि, दश दिशाधिपति, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य—इनके साथ अश्विनी देवताओं की भी उपासना करनी चाहिए।

आठ वसुओं के शुभ नाम हैं—१ भव, २ ध्रुव, ३ सोम, ४ विष्णु, ५ अनिल, ६ अनल, ७ प्रत्यूष और ८ प्रभव।

नौ निधियों के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। कुछ लोग नौ ग्रहों के प्रीति-कारक नौ रत्नों की ही आराधना करते हैं। यथा— सूर्य : माणिक्य। चन्द्रमा : मुक्ता। मङ्गल : प्रवाल। बुध : कौस्तुभ या हरा हीरा। गुरु : पुष्प-राग। शुक्र : वज्र। शनि : नीलम। राहु : गोमेधक (गोमेद)। केतु : वैदूर्य।

परन्तु अधिकांश साधक नौ मुद्राओं को ही नौ निधि के रूप में मानते हैं। यथा—१ खड्ग, २ खेट, ३ चक्र, ४ गदा, ५ चाप, ६ बाण, ७ तर्जनी, ८ अनल और ९ योनि-मुद्रा। इनमें 'योनि - मुद्रा' मुख्यतम मानी गई है।

दश दिशाधिपति और उनकी शक्तियों का विवरण निम्न प्रकार है—

दिक्	अधिपति	शक्ति
१ प्राक् (पूर्व)	इन्द्र	ऐन्द्री
२ आग्नेयी (दक्षिण-पूर्व)	अग्नि	स्वाहा या स्वधा
३ दक्षिण	वराह	वाराही
४ नैर्ऋति (दक्षिण-पश्चिम)	निॠति	चित्ता (खड्ग-हस्ता)
५ पश्चिम	वरुण	वारुणी
६ वायव्य (उत्तर-पश्चिम)	वायु	मृग-वाहिनी
७ उदीची (उत्तर)	कुबेर	कौमारी
८ ऐशानी (उत्तर-पूर्व)	ईशान	शूलिनी
९ ऊर्ध्व दिक्	ब्रह्मा	ब्रह्माणी (सरस्वती)
१० अधो दिक्	विष्णु	वैष्णवी (लक्ष्मी)

ऐशानी (उत्तर-पूर्व) दिशा में दुर्गा-माता की शूलिनी शक्ति विराजमान है, जो सर्वोपरि मानी गई है। इस शक्ति का उदय प्रति-दिन विभिन्न घड़ियों मे होता है, वह इस प्रकार है—

वार	दिक्	घड़ी
रविवार	पश्चिम या उत्तर-पश्चिम	प्रातः छः बजे से साढे दस बजे तक पूजा की जा सकती है
सोमवार	पूर्व या दक्षिण-पश्चिम	प्रातः छः बजे से नौ बजे तक
मङ्गलवार	उत्तर या उत्तर-पश्चिम	प्रातः छः बजे से साढे दस बजे तक
बुधवार	उत्तर या उत्तर-पूर्व	प्रातः छः बजे से मध्याह्न बारह बजे तक
गुरुवार	दक्षिण या दक्षिण-पूर्व	प्रातः छः बजे से मध्याह्न दो बजे तक
शुक्रवार	पश्चिम या दक्षिण-पश्चिम	प्रातः छः बजे से साढे दस बजे तक
शनिवार	पूर्व या दक्षिण-पूर्व	प्रातः छः बजे से नौ बजे तक

उपर्युक्त घड़ियों में उक्त दिशाओं में शूलिनी शक्ति का आवाहन करने से वांछित फल मिलता है।

प्रसङ्ग-वशात् यहीं योगिनी माता का भी उल्लेख आवश्यक है। अग्न्यात्मक दुर्गा के नवार्ण-मन्त्र की सिद्धि के लिये महा-गणपति, क्षेत्र-पाल, वटुक-भैरव तथा योगिनी माता का अनुग्रह प्राप्त करना अनिवार्य है। महा-गणपति, क्षेत्र-पाल एवं वटुक-भैरव के पूजा-विधान प्रसिद्ध हैं। परन्तु योगिनी रहस्य-मयी हैं। उनके सम्बन्ध में प्रकाश डालनेवाले ग्रन्थ भी कम हैं। यह ज्ञातव्य है कि किसी भी मन्त्र की सिद्धि के लिए अपने जन्म-नक्षत्र की देवता के अनुकूल तिथि, वार, योग और करण का शुभ मिलन होना चाहिये। वार के अनुसार २७ नक्षत्रों के २७ योग होते हैं। इनके अतिरिक्त १५ तिथियाँ और ११ करण हैं। सूर्य और चन्द्र के बीच की जो दूरी है, उसी के अनुसार तिथि बनती है और चन्द्र को वृद्धि तथा क्षय के अनुसार 'योगिनी' की दिशा बनती है। यथा—

शुक्ल पक्ष	दिक्	कृष्ण पक्ष	दिक्
प्रथमा (एकादशी)	प्राक् (पूर्व)	षष्ठी	प्राक् (पूर्व)
द्वितीया (द्वादशी)	उत्तर	सप्तमी	दक्षिण-पूर्व
तृतीया (त्रयोदशी)	दक्षिण-पूर्व	अष्टमी	दक्षिण
चतुर्थी (चतुर्दशी)	दक्षिण-पश्चिम	नवमी	दक्षिण-पश्चिम
पञ्चमी (पूर्णिमा)	दक्षिण	दशमी	पश्चिम
षष्ठी	पश्चिम	प्रथमा (एकादशी)	उत्तर-पश्चिम
सप्तमी	उत्तर-पश्चिम	द्वितीया (द्वादशी)	उत्तर
अष्टमी	उत्तर-पूर्व	तृतीया (त्रयोदशी)	उत्तर-पूर्व
नवमी	आकाश	चतुर्थी (चतुर्दशी)	आकाश
दशमी	भूमि	पञ्चमी (अमावास्या)	भूमि

देवी दुर्गा माता का शुभ वचन है—

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां, नवम्यां चैक-चेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या, मम माहात्म्यमुत्तमम् ।।

योगिनी माता के अनुग्रह से साधक यह जान सकते हैं कि कृष्ण-पक्ष की अष्टमी की 'वाराही' शक्ति ही शुक्ल-पक्ष की अष्टमी में 'शूलिनी' शक्ति के रूप में अनुग्रह करती हैं। अतः कृष्ण-पक्ष की अष्टमी से शुक्ल-पक्ष को अष्टमी तक श्रीदुर्गा - सप्तशती का पारायण करना सिद्धि-प्रद होता है।

इसी प्रकार कृष्ण-पक्ष की नवमी से शुक्ल-पक्ष की चतुर्दशी तक पारायण करने से 'खड्ग-धारिणी' माता के दर्शन मिलते हैं तथा साधक मृत्यु को जीत पाता है। उसे चिरंजीवी मार्कण्डेय महर्षि का सायुज्य भी मिल जाता है क्योंकि माता के खड्ग में काल (मृत्यु) की शक्ति निहित है। सप्तशती के अनुसार—

कालश्च दत्तवान् खड्गं, तस्याश्च चर्म निर्मलम् ।

दश दिशाओं में योगिनी की स्थिति जानने के बाद एकादश रुद्रों के शुभ नामों का स्मरण व पूजन होना चाहिये। एकादश रुद्र हैं—

१ अज, २ एक-पात्, ३ अहिर्बुध्न्य (ज्ञान-दाता के रूप में प्रसिद्ध), ४ विरूपाक्ष, ५ रैवत, ६ हर (शम्भु महादेव के रूप में प्रसिद्ध), ७ बहु-रूप, ८ त्र्यम्बक (महाराष्ट्र के 'नासिक' क्षेत्र में प्रतिष्ठित), ९ सावित्र, १० जयन्त और ११ पिनाकी।

प्रत्येक रुद्र का अलग-अलग पूजा-विधान होने पर भी माता की पूजा में ये सब अङ्ग-देवताओं के रूप में ही पूजे जाते हैं।

आदित्य १२ हैं। यथा—

१ चैत्र मास में त्वष्टा या वेदज्ञ, २ वैशाख में इन्द्राग्नी या तपन, ३ ज्येष्ठ में इन्द्र, ४ आषाढ़ में विश्वेदेव या मधु-रूपी सूर्य ५ श्रावण में महा-विष्णु या गभस्ति, ६ भाद्र में यम, ७ आश्विन में हिरण्य-रेता, ८ कार्तिक में दिवाकर, ९ मार्गशीर्ष में मृगशिरा, १० पौष में पूषा, ११ माघ में पितृ देवता अर्यमा अरुण, १२ फाल्गुन में भग सूर्य।

(क्रमशः)

भगवान् श्रीगोपीनाथजी आश्रम, श्रीनगर (कश्मीर)

पण्डित श्री प्राणनाथ कौल, सचिव भगवान् श्री गोपीनाथ आश्रम, श्रीनगर (कश्मीर)

जगद्-गुरु भगवान् श्रीगोपीनाथ जी की दया-रूपी छत्र-छाया अपने भक्तों तथा असहायों के लिए निरन्तर उपलब्ध रहती है। इस वर्ष के आरम्भ में कश्मीर में देश-द्रोहियों ने अल्प-संख्यक ब्राह्मणों पर अत्याचार किया, जिससे लोग बड़े हताश हुये। चूँकि दैवी शक्तियाँ महा-पर्वों पर विकसित हो जाती हैं और असामान्य तौर पर शरणागत को दया का पात्र बनाती हैं, अतः ९ जून ८६ को, जो भगवान् श्री-गोपीनाथ जी आश्रम का इस वर्ष का पहला महा-पर्व था, उस दिन विशेष आयोजन का—महा-यज्ञ का अनुष्ठान किया गया।

हताश जनता नए उत्साह तथा सामर्थ्य का वरदान पाने के लिए ८ जून से ही आश्रम में एक-त्रित होने लगी।

महा-यज्ञ का प्रारम्भ ८ जून की आधी रात को ही हुआ, जो क्रमशः ९ जून को दिन में चार बजे पूर्ण आहुति से सम्पन्न हुआ। भगवान् जी की दिव्य-ज्योति दुखी तथा निस्सहाय जनता को उत्थान तथा साहस का वरदान देती रही और जनता अधिक-से-अधिक संख्या में आकर रात के बारह बजे तक प्रसाद लेकर आशीर्वाद पाती रही।

१८ जुलाई को श्री भगवान् जी की ८८वीं महा-जयन्ती के उपलक्ष्य में भक्त-जन १७ जुलाई से ही आश्रम के प्राङ्गण में एकत्रित होने लगे। श्रद्धालु जनता 'पादुका - पूजन' में सम्मिलित होने को आतुर थी। पूजा का श्रीगणेश ठीक ८ बजे प्रातः वेद - मन्त्रों के उच्चारण से हुआ। आरती १२ बजे उतारी गई। उसके कुछ समय पश्चात् साधुओं का जलूस दशनामी अखाड़े से 'छड़ी मुबारिक' लेकर आश्रम के प्राङ्गण में प्रविष्ट हुआ। यह पवित्र 'छड़ी' शिव और पार्वती की प्रतीक है, जिसकी वर्ष की पहली यात्रा आश्रम के लिए होती है और अन्तिम यात्रा स्वामी अमरनाथ जी गुफा के लिए रक्षा-बन्धन के पवित्र त्यौहार पर होती है।

इस वर्ष भगवान् जी की कृपा से साधुओं की बहुत बड़ी संख्या आश्रम में उपस्थित हुई, जिनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया गया। दिन भर भिन्न-भिन्न भजन-मण्डलियों के कीर्तन होते रहे और भक्त-जनों का ताँता बँधा रहा। लोग प्रसाद लेकर तथा भगवान् जी की संगमरमर-मूर्ति से आश्वासन पाकर और उनके पवित्र चिह्नों से सान्त्वना एवं आशीर्वाद से अनुगृहीत होकर चलते रहे, जब-कि एक बड़ी संख्या सायंकालीन आरती में सम्मिलित होने के लिए आतुर थी। आरती सायं ७.१५ बजे आरम्भ हुई। आज का विशेष प्रसाद ११.३० बजे रात तक बड़ी श्रद्धा तथा प्रेम से यात्रियों में बाँटा गया।

२१ जुलाई को आश्रम में गुरु-पूर्णिमा का पर्व बड़ी श्रद्धा तथा भक्ति-भाव से मनाया गया। चार बजे से 'श्री भगवान् गोपीनाथ सहस्रनाम' के पाठ तथा अग्नि-होत्र का एक घण्टे का कार्यक्रम था। पाँच बजे से 'श्रीगुरु - गीता' का सामूहिक पाठ हुआ, जिसमें नर - नारियों तथा छोटे-बड़ों ने भाग लिया और नियमानुसार ७.१५ बजे सायं-काल सामूहिक आरती हुई, जिसमें देश-हित तथा मानव-कल्याण के लिए विशेष प्रार्थना की गई।

लिए, सत्य को स्थूल से प्रकट करने को और उसे योग्यता अनुसार पात्र में भरने के लिये फ्रांस, इटली, अरब आदि स्थलों में भ्रमण करके, हिमालय को दिव्य-भूमि में जाकर तपश्चर्या की। अपने उद्देश्य को सफल करके हिमालय से उतरकर भारत-वर्ष की पैदल प्रदक्षिणा की। उसी समय आबू, गिरनार, आदि स्थानों में अघोर-सिद्ध अर्जुन-पुरी, कैलास-पुरी, हरनाथ-गिरि आदि व्यक्तियों से और ताप्ती के किनारे अश्वत्थामा से भेंट हुई। अश्वत्थामा को वहाँ के भील 'माथू कोहेलो बाबा' नाम से पहचानते थे।

कालेज का अभ्यास कर युरोप की मुसाफिरी करके, हिमालय में तपश्चर्या करके, अन्तर के संस्कार और भो जाग्रत् होने से, बाबाश्री ने आबू जाकर एकान्तवास करने का निश्चय किया। परन्तु पूज्या माँ जो के तीव्र आग्रह से बाबाश्री को काशी पधारना पड़ा। यहाँ से समय-समय पर रायपुर, नागपुर, आदि स्थानों में भो जाना हुआ, जहाँ शिष्य-मण्डलो जमी। उसी समय छगनलाल को उपदेश-पूर्ण पत्र लिखे गये। धनुर्वेद के कुछ मन्त्र--स-द्रव--भी लिखे गये, जो मन्त्र, तन्त्र तथा शास्त्र-सम्बन्धी दूसरी लिखी हुई पुस्तकों के साथ खो गये।

बाबाश्री की पत्नी का इसी समय देहान्त हुआ। उसके बाद रायपुर, नागपुर, कलकत्ता आदि स्थानों में थोड़ा-थोड़ा समय व्यतीत करके सन् १९२२-२३ में उन्होंने मुम्बई पधारकर अपने शिष्य दवे कन्हैयालाल रणछोड़ भाई के यहाँ ठहरने की कृपा की। कुछ समय बोरीवल्ली, मलाड, मुम्बई, घाटकुपर, बरसोवा आदि स्थानों में निवास करने की कृपा करके मुम्बई में रहनेवाले, अपने शिष्यों को अपने सन्मुखत्व का अलभ्य लाभ दिया। मुम्बई में घाटकुपर, बोरीवल्ली आदि के निवास समय, बाबाश्री ने कृपा करके 'भैरवोपदेश' नाम की अमूल्य पुस्तक लिखी, जो १९३४ में प्रकट हुई। उसी समय उन्होंने मुझे (मैं उस समय लन्दन में था) गुजराती कविता में कुछ पत्र भेजे थे, वे अत्यन्त गूढ़ शब्दों में लिखे गये हैं।

स्वामी शङ्कराचार्य जी त्रिविक्रम तीर्थ ने—जिन्होंने शङ्कराचार्य-पद छोड़ने के पश्चात्, मुम्बई के बोरीवल्ली नाम के उप-नगर में बाबाश्री से अघोर-दीक्षा ली थी, व संस्कृत में अघोर-सूत्र लिखे थे—बाबाश्री के संक्षिप्त जीवन-चरित में लिखा है कि 'परम पूज्य बाबा श्रीमोती-लालजी महाराज जैसे गहन मन्त्र-शास्त्र-ज्ञाता और योगानुभवी महात्मा दूसरे देखने में नहीं आते हैं।' बाबाश्री ने १९३० से १९४७ की अवधि में समय-समय पर उपदेश-रूप में कम-से-कम १५२० भजन, कविताएँ, स्तुति आदि लिखीं, जिनमें से कुछ का संग्रह 'उपदेश मुक्तावली' नाम से छपा है। सन् १९१३ में बाबा श्री ने अपने एक भजन में —'भारतभूमि ने दया करी स्वतंत्रता प्रदान, एज मांगवूं प्रजा सुखी रहे हमारी'—देश स्वतंत्र हो और प्रजा सुखी रहे, यह प्रार्थना प्रभु से की है। सन् १९१७ में भगवान् शिव की आरती में—'ऐक्यं देहि स्वदेशे देशोदय-प्रातः, स्वाराज्यं प्रति नय हे हिन्द-प्रजा-तातः' आदि शब्दों में वही उच्च भाव प्रकट किये हैं। सन् १९१८ में भगवान् गणेश की आरती में भी वही प्रार्थना है। सन् १९४४ में भगवान् कृष्ण की आरती में भी वही अर्थ-सूचक भाव है और अन्य कई भजनों में भी, रहस्य-गर्भित, वही स्वतन्त्रता प्रदान करने की, प्रभु से प्रार्थना है।

यह स्वतंत्रता प्रदान होवे, इसीलिये सन् १९३१ में, देश के उद्धार और स्वतंत्रता प्राप्त होने के भाव से युक्त बाला-गर्भित श्रीयन्त्र ३० फुट डायमिटर का भू के ऊपर बनाया गया था। उसमें योगानुभूत रंग भरे गये थे—और शरणागत-पुटित, हवनात्मक चण्डी-यज्ञ किया था। दूसरा यज्ञ सन् १९३३ के साल में हुआ, जिसमें 'यूयं गच्छतु इंग्लैंड यदि व्यापारमिच्छथ'—इस संपुट से आहुतियाँ दी गई थीं। यहाँ से प०

पू० बाबाश्री ने 'भारत छोड़ो' का भाव प्रकट किया था, जिसका प्रस्ताव कांग्रेस ने सन् १९४२ में किया। उक्त यज्ञ के समय शङ्कराचार्य त्रिविक्रम तीर्थजी, ब्रह्मचारी नृसिंह शर्मा आदि दूसरे भी अनेक विद्वान्, यज्ञ-क्रिया के दर्शनार्थ आये थे। उसी समय प० पू० बाबाश्री ने भविष्यावाणी की थी कि सोलह वर्ष के अन्दर स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। आज बड़े आनन्द की बात है कि उनके शिष्यों को—'**हम-सा न भाग्यवाला, क्यों हो न दिल गरूरी**'—इन शब्दों को याद करके, बड़ी खुशी होती है, क्योंकि १४ वर्ष के अन्दर ही वह भविष्य-कथन सच्चा हुआ और देश को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, यह देश का सौभाग्य है।

परम पूज्य बाबा श्री का विशाल, अलौकिक ज्ञान, कौलावधूत की अवस्था, मानसिक बल, अलौकिक दिव्यता आदि महान् गुणों से परिचित व्यक्तियों को अलभ्य लाभ मिला है, और मिलता रहता है। मन्त्र-शास्त्र में महान् उच्च कोटि का मार्ग ऊर्ध्वाम्नाय मार्ग कहा जाता है। वह मार्ग सचमुच खड्ग की धार पर चलना जैसा कठिन है, परन्तु बाबा श्री को वह सुख-शय्या में सोने के समान सरल था। जिन व्यक्तियों ने उनका आश्रय ढूँढ़ा और लिया है, उन सबको भी, उक्त मार्ग पूज्य श्री की दया से अत्यंत सरल और उच्च दिशा में ले जानेवाला हो रहा है। बाबा श्री की स-चोट शब्दों में उपदेश करने की पद्धति सब सुननेवालों को मुग्ध बना देती है। वे प्राचीन व आधुनिक दृष्टांतों से सबके मन की शंका दूर करते हैं। इसलिये, बहुत से आधुनिक पाश्चात्य शिक्षण लेकर आये हुये प्रोफेसर, वैज्ञानिक, न्याय-मूर्तियाँ, तत्व-ज्ञान-वेत्ता, डाक्टर व इतर विद्वान् बाबाश्री के सच्चे उपासक रहे हैं, यह उत्साह की बात है।

इस समय शाक्त-संप्रदाय का सच्चा रहस्य समझे बिना जो लोग इस पर धिक्कार-युक्त आक्षेप कर रहे हैं, इस बारे में, बाबाश्री को अति खेद है। उस शास्त्र का अच्छी तरह अध्ययन होवे और उसका गूढ़, सच्चा रहस्य, जनता की समझ में आवे, और शक्ति का प्रभाव देखने में आवे, इसलिये वे स्वयं सतत प्रयत्न कर रहे हैं और ऐसे सब प्रयत्न करनेवालों को अपनी विशाल ज्ञान-युक्त सच्ची सलाह देकर, रास्ता बताते हैं। समय-समय पर श्री चण्डी मासिक में, लेख प्रकट करके अपनी कौलावधूत की व्यवस्था और शक्ति जन-कल्याणार्थ दे रहे हैं।

परम पूज्य बाबाश्री के दरबार में नाना प्रकार के लोग आ जाते हैं। कुछ लोग दीपक के काश से खिंचे पतंगे की भाँति चमत्कार देखने की इच्छा से आते हैं, और काश से झुलसे पतंगे की तरह भाग जाते हैं।

कोई अपनी शक्ति बता उस सामने को शक्ति को तौलना चाहते हैं, वे लुट जाते हैं।

कुछ लोग अर्थार्थी होते हैं, जो यथा-काल की अनुकूलता से सफल भी होते हैं, या हो सकते हैं।

कुछ दीनार्त्त आपद्-ग्रस्त आते हैं, जिनकी वास्तविक भावनानुसार बाबा श्री का दरबार, उनके लिये सदैव खुला रहता है। वे भी अपना-अपना मार्ग पा उसमें मस्त होते हैं।

सबको परम पूज्य बाबाश्री का यही उपदेश है– '**हमारूं तें तमारूं छे तमारूं विश्व ने आपो।**'

ये शब्द परम पूज्य बाबाश्री ने अपनी एक गुजराती कविता में लिखे हैं। इनका हिन्दी-अनुवाद यह होता है—'हमारा सो तुम्हारा है, तुम्हारा विश्व को देवो।'

(३)

श्रीहरकिशन ल० झवेरी द्वारा लिखित विस्तृत चरित

परम पूज्य बाबाश्री (महाराज श्रीमोतीलाल जी मेहता) के संसर्ग में आये हुये बहुत से लोगों ने पूज्यश्री की जीवनी जानने की उत्कण्ठा दिखाई है। पूज्यश्री ने स्वयं अपने मुख से अपनी जीवनी किसी को बताई हो, ऐसा इस लेखक को पता नहीं है। जो कुछ अभी तक जीवनी-रूप से लिखा गया है, वह पूज्यश्री के श्रीमुख से उनके सम्पर्क में रहनेवालों द्वारा यदा-कदा यत्किंचित् सुनी हुई बातों पर आधारित है।

जीवनी लिखने की प्रथम उत्कण्ठा श्री शारदा पीठ के एक समय के मान्य शङ्कराचार्य श्री त्रिविक्रम तीर्थ को हुई और उन्होंने पूज्यश्री के श्रीमुख से सुनी हुई तथा इधर-उधर प्रचलित बातों को जोड़कर एक छोटी-सी जीवनी सं० १९९१ में लिख डाली, जो पूज्यश्री द्वारा लिखित 'श्रीभैरवोपदेश' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुई। पंडित ज्वालादत्त मिश्र ने भी एक लेख द्वारा पूज्य बाबाश्री के सम्बन्ध में कुछ अन्य बातें सं० १९९९ के पौष मास के 'चण्डी' अङ्क में प्रकट करवाईं। बाद में पूज्य बाबाश्री में अथाह श्रद्धा रखनेवाले एवं 'चण्डी' मासिक के प्राण-रूप श्री पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल ने पूज्यश्री की जीवनी 'चण्डी' मासिक में प्रकट करने की इच्छा प्रदर्शित की। अतएव श्री शंकराचार्य द्वारा लिखित जीवनी में कुछ अन्य बातें जोड़कर एक नई जीवनी तैयार की गई, जो 'चण्डी' मासिक के सं० २००४ के मार्गशीर्ष अङ्क में प्रकाशित हुई।

यह छोटा-सा जीवन-चरित पढ़ने के पहले उपर्युक्त जीवनी और लेख यदि पाठक पढ़ सकें, तो अच्छा रहेगा। इस चरित के लिखने का उद्देश्य यह बताना है कि पूज्य बाबाश्री कितने महान व्यक्ति हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि पूज्यश्री की महत्ता लेख द्वारा संसार को बताई कैसे जाय? पूज्यश्री के निकट में रहनेवाले चाहे जितना कहें या लिखें कि आप एक महान् से भी महान् योगेश्वर हैं, किन्तु दुनिया उसे कैसे मान सकती है? फिर सच्ची बात तो यह है कि पूज्य बाबाश्री स्वयं प्रकट होने की इच्छा रखते नहीं। अतएव आपकी इच्छा के विरुद्ध आपके उपदेश या प्रवचन प्रकाशित करके आपकी महत्ता बताई भी नहीं जा सकती।

कई लोग कहते सुने गए हैं कि जिन महाराज या गुरुजी के यहाँ वे जाते हैं, उनकी देह में अन्य देव-देवियों का आवाहन होता है। ये सब बातें सत्य हैं या असत्य, इसकी चर्चा यहाँ नहीं करना है लेकिन ऐसी ही बातें यदि पूज्यश्री के विषय में लिखी जायँ, तो उससे आपकी महत्ता की सम्पुष्टि नहीं हो सकती। कई लोग कहते हैं कि उन्होंने अमुक योगी में यह चमत्कार देखा और अमुक परमहंस में वह सिद्धि देखी। पूज्य बाबाश्री के सम्बन्ध में भी ऐसी ही बात बताकर हम आपका माहात्म्य प्रतिष्ठित नहीं कर सकते। इसमें सन्देह नहीं कि पूज्यश्री के निकट में आनेवाले लोगों के ऐसे बहुत से अनुभव यहाँ बताये जा सकते हैं किन्तु ऐसी सिद्धि या चमत्कार अपरा-विद्या का साधन करनेवाले ही दिखाते हैं। परा-विद्या प्राप्त करके अक्षर-स्थान पर पहुँचा हुआ व्यक्ति ऐसे चमत्कार कभी नहीं दिखाएगा। पूज्यश्री तो कल्पवृक्ष हैं। अतएव आपका आश्रय पानेवाले सभी व्यक्तियों को कल्याण-युक्त इच्छित वस्तु की प्राप्ति हुई है लेकिन वह कैसे प्राप्त हुई है, इसका विवरण अन्य किसी को जब मालूम ही न हो, तब उन बातों को लेख द्वारा प्रसिद्ध कर आपकी महत्ता बताई कैसे जाय?

हमारे पास ऐसा कुछ भी कहने का नहीं है कि पूज्यश्री के इतने अधिक शिष्य हैं। वास्तव में आपके इतने कम शिष्य हैं कि उन्हें अंगुली पर गिना जा सकता है। पूज्यश्री के सामने यदि कोई व्यक्ति आ जाय, तो आप उसके कल्याणार्थ उपदेश जरूर करते हैं लेकिन पूज्यश्री ने कभी प्रकट रूप से व्याख्यान देकर अपनी विद्वत्ता जताने के लिए या ख्याति पाने के लिए या लोगों को आकर्षित करने के लिए या शिष्यों की संख्या बढ़ाने के लिए प्रयत्न नहीं किया। पाठकों को जानकर शायद आश्चर्य हो कि पूज्यश्री सर्वज्ञ होते हुये भी स्वयं सदा हर समय गूंगे, बहरे और सांसारिक बातों से अनजान-जैसे ही रहते आये हैं।

पूज्यश्री के निकट में रहनेवाले लोगों से बहुतों ने पूछा है कि उनको पूज्यश्री का क्या अनुभव हुआ लेकिन हलुवे के स्वाद का, जो खाये, उसी को पता चले। उसका वर्णन कैसे क्या किया जाय ? पूज्य बाबाश्री के सम्पर्क में बिताए गए कई वर्षों के अनुभव २-५ या १० वाक्यों में कैसे बताये जायँ ? यह जीवनी तो पूज्य बाबाश्री की लिखी जा रही है, न कि उनका अनुभव करनेवालों की। ऐसे अनुभव बताकर यहाँ दूसरों की प्रशंसा करने का इरादा नहीं है। पूज्यश्री का उपदेश है कि 'दिल का अनुभव नहीं कहना।' तदनुसार वह अनुभव प्रकट करने की लाचारी बताए बिना गुजारा नहीं है। फिर आपकी महत्ता दुनियादारी की बातें बताकर नहीं बताई जा सकतीं। मात्र यही सूझता है कि जैसे भगवान् श्रीकृष्ण की महत्ता उनके गीता-रूपी परमोपदेश से प्रकट है, वैसे ही आपकी महत्ता बताने के लिए आपके द्वारा स्वयं लिखे हुए उपदेशों पर ही दृष्टि दौड़ानी होगी।

पूज्यश्री द्वारा लिखे हुए मन्त्र-शास्त्र, गूढ़ार्थ से भरे हुए १००० से ज्यादा भजन, उपदेश-युक्त प्रवचन और प्रकृति के प्रवाह-नियमार्थ आप द्वारा विश्व में किए गए कई फेर-फार जब जगत् के समक्ष रखे जायँगे, तब आपकी महत्ता अपने आप व्यक्त होगी। यहाँ वह सब लिखा नहीं जा सकता। अभी तो केवल आप द्वारा लिखित कुछ भजनों के अर्थ देकर और आपके कहे हुए वचनों को बताकर यह स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे कि आप कौन और कितने महान् महापुरुष हैं।

यह लेख तुरन्त छपकर प्रकाशित हो, इस उद्देश्य से नहीं लिखा जा रहा है अपितु पूज्य बाबाश्री द्वारा कहे हुए वचनों को, जो प्राक्कथन में बताए गए हैं कि इस देह-सम्बन्धी बातें भी शायद कभी पुराण बन जायँ' ध्यान में रखकर इसे लिखा जा रहा है। संभव है आपकी यह छोटी सी जीवनी भी कभी पुराणों में कथा-रूप से प्रकट होकर आपकी महत्ता दिखावे।

पूज्यश्री कौन हैं, यह आपके कहे हुए शब्दों या भजनों से खोज निकालना होगा। आप सं० १९९७ में बनारस के सिद्धगिर में ठहरे थे। एक दिन रात को लगभग ११ बजे श्री शम्भूराम नागर और उनके भाइयों को बुलवाकर आपने उनके कुटुम्ब की और कल्याण की कई बातें कहीं। अनायास प्रसंग छिड़ जाने पर आपने कह डाला कि **'भगवान् श्रीकृष्ण का प्रकटावतार था और 'यह' (आपका) गुप्तावतार है।'** ये शब्द हृदय में घर कर गए। आप गुप्तावतार हैं, ऐसा मानने-वालों की शङ्का का आपने खुद अपने ही श्रीमुख से उपर्युक्त शब्दों द्वारा समाधान कर दिया। लेकिन 'गुप्तावतार' क्यों लिया, उसका उद्देश्य श्रीमुख से किसी ने सुना हो, ऐसा जान नहीं पड़ता। श्री पं० देवीदत्त जी शुक्ल ने आपको प्रभु समझकर एक पुष्पांजलि लिखी। उसमें श्री शुक्ल जी ने स्तवन करते हुए आपसे अनेक प्रश्न किए जिनका जवाब पूज्य बाबा श्री ने एक भजन-द्वारा दिया। उस भजन के प्रथम छः पदों में पूज्य बाबाश्री ने, पृथ्वी पर जन्म कैसे लिया, इस सम्बन्ध की कुछ विज्ञान-मय बातें बताई हैं, जो लेखक को बहुत कम समझ में आती हैं। फिर भी इतना समझ में आता है कि कुल की कोई शक्ति भूमि पर च पड़ी। ६वें पद का भावार्थ यह है कि—

कलियुग के कलह के मल से भरे हुए लोगों के कान में सुनाई पड़ता रहे, इसलिये करुणा-मय भगवान् श्रीकृष्ण ने स्व-कण्ठ से निम्नोक्ति गाई थी––

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ! अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशानां च दुष्कृताम् । धर्म-संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।

अतएव उक्त ६ पदों के अनुसार जो शक्ति अवतरित हुई, उसने––मानो पूज्य बाबाश्री ने–– ब्रह्म, ईश्वर और चैतन्य शक्ति का गीत सुनाने के लिए अवतार लिया था।

'बाबा किस सागर का मोती है ?'––इसका जवाब पूज्यश्री ने ८ वें पद में दिया है, जिसका भावार्थ यह है–'वह शक्ति काल के हाथ में पाले हुये दिव्यता के झरते हुये स्रोत में से भगवान् शिव द्वारा उत्पन्न सागर के मूल पुरुष-रूप मत्स्य का मल 'मोती' (आप) है।'

इस भावार्थ का सहज बोध सम्भव नहीं है, इसमें सन्देह नहीं, तो भी इतना समझना तो सरल ही है कि भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा **'यदा यदा हि धर्मस्य''' संभवामि युगे युगे'** में दिये हुये अभय वचन के अनुसार आपका अवतार हुआ था और वह अब तक गुप्त ही रहा है।

अब समझना यह है कि अवतार धारण करनेवाले पूज्य बाबाश्री हैं कौन ? आप कहते हैं कि श्री रामचन्द्र जी याने रामावतार इस सौर के विष्णु का अवतार था और भगवान् श्रीकृष्ण इस सप्तक के महा-विष्णु का पूर्णावतार अर्थात् सम्पूर्ण कला-युक्त प्रकटावतार था। फिर भगवान् बुद्ध इस सौर के ब्रह्मा के पद पर नियुक्त किये गये हैं। इसी प्रकार अवतार धारण करनेवाले आप स्वयं कौन थे, यह जानना आवश्यक है। आपने भगवान् महा-शिव के अनन्त भाव का वर्णन करनेवाला एक भजन लिखा है, जिसकी प्रथम पंक्ति है–**'अनन्त-रूपी शिवाम्बु सच्चित्, प्रभु तुम्हीं ने स्वलक्ष दीन्हा'** (उपदेश मुक्तावली–भजन-संख्या ४५)। इस भजन का अन्तिम पद का भावार्थ इस प्रकार है–

विराट् स्वरूप के भगवान् महा-शिव इस जगत् सृष्टि के प्रत्येक अणु में व्याप्त हैं और उन अनंत-रूपी भगवान् महा-शिव का रूप स्वयं 'मोती' है। आपका वर्णन शब्द से नहीं हो सकता, फिर भी आपने अपने भक्तों को स्वयं अपने में ही भगवान् महा-शिव के भाव का दर्शन करवाया है।

उपर्युक्त पद बताता है कि अवतार धारण करनेवाले पूज्य बाबाश्री इस सप्तक के महा-शिव 'भगवान् मयङ्क' हैं।

यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि **'यदा यदा हि धर्मस्य'** में तो भगवान् कृष्ण ने कहा है कि **'तदात्मानं सृजाम्यहम्'** अर्थात् तब मैं (भगवान् श्रीकृष्ण) अपने रूप को प्रकट करता हूँ। तो फिर भगवान् श्रीकृष्ण ने अवतार न लेकर भगवान् शिव ने अवतार क्यों लिया ? इस सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि हिन्दू शास्त्रों में बताये हुए १० अवतारों में किसी एक महापुरुष ने दो बार अवतार लिया हो, ऐसा उदाहरण नहीं। भगवान् श्रीकृष्ण ने 'धर्म की ग्लानि होने पर उसके संस्थापनार्थ मैं अवतार लूंगा' ऐसा अवश्य कहा है किन्तु उस अभय वचन का पालन करने के लिये, भगवान् श्रीकृष्ण भी जिनको अपने से बड़ा समझते हैं, वे भगवान् महा-शिव श्री मयङ्क अवतार धारण करें, तो यह नहीं कहा जा सकता कि साधु पुरुषों का उद्धार करने और दुष्ट कर्म करनेवालों का विनाश करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अवतार लेने का जो अभय वचन दे रखा है, उसका उन्होंने पालन नहीं किया।

भगवान् महा-शिव के अवतार लेने का एक और भी प्रामाणिक कारण मिलता है। राजा भर्तृहरि की कथा पाठक जानते हों, यह सम्भव है, किन्तु नाटक और चल-चित्रवालों ने जनता के समक्ष

उनके असली स्वरूप को नहीं रखा, कारण उनमें समाये हुए रहस्य को कोई नहीं जानता। पूज्यश्री के मुख से सुनी हुई राजा भर्तृहरि की कथा निम्न प्रकार है—

भगवान् श्रीकृष्ण के वंश में जन्मे हुए मालव परमार ने मालवा प्रान्त बसाया। मालव परमार के इस वंश में प्राय: २१०० वर्ष पूर्व सिंधुल मालव नामक एक राजा हुए। उस समय मालवा में चौर नामक एक वनजारा जाति विप्लवी बनकर लूट-पाट किया करती थी। यह जाति सिन्धुल मालव से हार गई। बाद में इन्होंने उत्तर में कपिलाश्रम से लेकर दक्षिण में भृगु आश्रम (भरुच) तक और मध्य में बरार प्रान्त तक अपना राज्य जमाया। राजधानी उज्जयिनी में रही।

महाराजा सिन्धुल के दो लड़के थे—बड़ा भर्तृहरि और छोटा विक्रम। भर्तृहरि जब १३ वर्ष के हुए, तभी सिन्धुल राजा का देहान्त हो गया। राज्य का भार मन्त्री विचित्र-चक्षु के हाथ आया। मन्त्री ने राज-कुमारों को उचित शिक्षण दिया। भर्तृहरि ने धनुर्विद्या के साथ-साथ अनेक विषयों में विज्ञता प्राप्त की और उनकी विलक्षण प्रतिभा देखकर विचित्र-चक्षु ने १६ वर्ष की अवस्था में ही उनका राज्याभिषेक कर दिया।

अब राजा भर्तृहरि राज्य संभालने लगे। उसी समय उन्होंने १०० सूत्रों में 'नीति-शतक' नामक अपूर्व रचना लिखी। राज्य करते समय वे सूत्र मार्ग-दर्शक गिने जाते थे। कुछ समय बाद विचित्र-चक्षु ने संन्यास लिया और उनका लड़का राज-मन्त्री बना। उस समय उत्तर में हूण जाति का जोर बढ़ रहा था। काबुल, पेशावर जीतकर वह पञ्जाब तक आ गई थी। हूण लोगों को मार भगाने के लिए राजा भर्तृहरि ने राज्य का भार विक्रम को सौंप दिया और स्वयं सैनिक तैयारी करने लगे। उन्होंने एक बड़ी भारी सेना तैयार की। हूणों ने आगे आक्रमण करना प्रारम्भ किया और राजा भर्तृहरि भी सेना के साथ निकल पड़े। शतद्रु के उत्तर में उन्होंने हूणों का सामना किया और भयङ्कर युद्ध के बाद हूणों को मार हराकर तक्षशिला के उत्तर की ओर भगा दिया। वापस आते समय वे तक्षशिला विद्या-पीठ देखने गये।

हूणों का पीछा कर मार भगानेवाले राजा भर्तृहरि प्रथम भारतीय थे। अतएव विजय की बधाई देने के लिए काश्मीर के महा-राजा और पंजाब के अन्य राजा लोग तक्षशिला आये। महा-राजा काश्मीर ने अपनी अति सुन्दर पुत्री पिङ्गला का बड़े सम्मान से भर्तृहरि के साथ विवाह भी कर दिया। राजा भर्तृहरि पिङ्गला में अत्यन्त आसक्त हो गये। उज्जयिनी वापस आने पर भी उन्होंने विक्रम से राज्य-भार न लिया। वे अपना सारा समय अन्तःपुर में पिङ्गला के साथ बिताने लगे। इसी समय उन्होंने 'शृङ्गार-शतक' लिखा।

बहुत समय ऐसे ही बीत गया। काश्मीर में स्वच्छन्द होकर घूमनेवाली पिङ्गला को अन्तःपुर बन्दी-गृह-जैसा लगने लगा। भर्तृहरि का सङ्ग उसे अजीर्ण-सा सिद्ध हुआ। राजा पिङ्गला के वश में थे ही। पिङ्गला ने राजा से राज्य का भार सँभालने का आग्रह किया और वे उसकी आज्ञा के चाकर बनकर राज्य का कार्य देखने लगे। पिङ्गला को अब अवकाश मिलने लगा। उसने गाँव के बाहर एक सुन्दर बगीचा बनवाया और नित्य वहाँ जाने लगी। वहाँ अश्व-पाल से उसका सम्बन्ध हो गया। अश्व-पाल अपनी जान जोखिम में समझता था। वह हर समय डरता भी रहता था। उस समय भी राज्य विक्रम के ही हाथ में था।

एक दिन विक्रम अश्व-शाला देखने गये। वहाँ सभी घोड़े दुर्बल दिखाई पड़े। घोड़ों को पेट भर दाना-चारा राज्य की ओर से मिलने पर भी दुर्बल रहने के कारण विक्रम ने अश्व-पाल को धम-

काया और कुछ ही दिनों में घोड़े हृष्ट-पुष्ट न देखने पाये, तो नौकरी से हटा देने को चेतावनी भी दी। अश्व-पाल अब घोड़े की देख-भाल करने लगा। अतएव उसको पिङ्गला के पास जाने का समय नहीं मिलता था। पिङ्गला ने जब अश्व-पाल से कम आने का कारण पूछा, तब उसने विक्रम द्वारा दी गई चेतावनी की बात बताई। इस पर पिङ्गला विक्रम पर कुपित हो उठी और उन्हें निकाल बाहर करने का पाखण्ड खड़ा किया।

एक दिन जब राजा भर्तृहरि अन्तःपुर में गये, तब उनसे पिङ्गला ने अपना यह आक्षेप कह सुनाया कि 'मुझ पर विक्रम ने कु-दृष्टि डाली है।' भर्तृहरि को यह बात असम्भव लगी। लेकिन पिङ्गला झूठ बोल रही है, यह बात भी मानी नहीं जा सकती थी। फिर पिङ्गला ने विक्रम को निकाल देने की हठ पकड़ ली। राजा भर्तृहरि के पूछने पर विक्रम ने आक्षेप को अस्वीकार किया और यह भी कह डाला कि पिङ्गला स्वयं कुपथा है। राजा ने विक्रम से राज्य त्याग करने को कहा और विक्रम उज्जयिनी छोड़कर चले गये।

राजा भर्तृहरि को प्रकृति ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'केन्द्रस्थ व्यक्ति' के रूप में उत्पन्न किया था। इस सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि इस सप्तक के महा-पुरुष भगवान् 'महा-शिव' के अन्तर्गत भगवान् 'ईशान' दूसरे भैरवों के साथ इस सप्तक का काल-चक्र पर से सञ्चालन करते हैं। इस कार्य के लिये जब अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, तब चित्-सत्व में से, मानो पृथ्वी के केन्द्र में से, प्रकृति एक महान् व्यक्ति का उत्थान करती है। उस व्यक्ति को केन्द्रस्थ व्यक्ति कहते हैं। काल-चक्र पर से प्रत्येक व्यक्ति काम नहीं कर सकता। 'केन्द्रस्थ व्यक्ति' में शक्ति भरी होने के कारण केवल वही वहाँ काम कर सकता है। साधारण व्यक्ति में शक्ति भरी नहीं जा सकती। यदि शक्ति भरने का प्रयत्न किया भी जाय, तो वह फट जायगी। चित्-सत्व में से उत्थान पानेवाले केन्द्रस्थ व्यक्ति का शीघ्र उत्थान करने के लिये अष्ट-भैरवों में से किसी एक भैरव को पृथ्वी पर जन्म लेना पड़ता है।

साधारण रूप में सांसारिक जीवों का उत्थान क्रमशः होता है। प्रवाह-कोण में जन्मे हुये जीवों को पहले उद्भिज, फिर उद्भिज के बाद स्वेदज, अण्डज और योनिज में करोड़ों वर्ष चक्कर लगाना पड़ता है और तब वह मनुष्य-योनि प्राप्त करता है। मनुष्य-योनि में भी अनेक जन्म पुरुषार्थ करते-करते बीत जाते हैं। इस प्रकार साधारण जीव को ईश्वरत्व प्राप्त करने में करोड़ों वर्ष लग जाते हैं। फिर भी उस जीव के सुख भोगते-भोगते अग्रसर होने के कारण वह क्रियात्मक नहीं होता अर्थात् उसमें क्रिया-लक्ष्य का भाव उपस्थित नहीं होता। अतएव उस जीव-द्वारा प्रकृति की आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती। प्रकृति की आवश्यकता की तुरन्त पूर्ति हो जाय, इस उद्देश्य से, जैसा ऊपर बताया गया है, भगवान् भर्तृहरि को जीव-केन्द्र में से उत्पन्न किया गया था और उस जीव के शीघ्र उत्थान के लिये भगवान् रुरु भैरव ने पृथ्वी पर गुरु 'श्रीमत्स्येन्द्रनाथ' का अवतार लिया था।

गुरु श्रीमत्येन्द्रनाथ श्रीभर्तृहरि को अपनी ओर खींचना चाहते थे। अतएव वे शिष्य-मण्डल के साथ उज्जयिनी के बाहर निकट के जंगल में डेरा डाले हुए थे। ऐसे महा-पुरुष जहाँ जाते हैं, वहाँ का वातावरण भी उनके अनुकूल बन जाता है और उनका कार्य भी सरलता से पूरा हो जाता है। श्री भर्तृहरि के खिंचने रूप कार्य के भी सिद्ध होने का समय आ चुका था।

विक्रम राजधानी छोड़कर श्रीमत्स्येन्द्रनाथ के आश्रम में आ पहुँचे। गुरुश्री ने विक्रम को आश्वासन देकर अपने पास रखा और कहा कि समय पर सत्य अवश्य प्रकट होगा।

गुरु श्रीमत्स्येन्द्रनाथ जब से उज्जयिनी के निकट आकर ठहरे थे, तब से उनके पास एक गरीब ब्राह्मण अपना दारिद्रय दूर करने के हेतु आया करता था। आश्रम में विक्रम का आगमन होने के बाद भगवान् गोरखनाथ ने उस कङ्गाल ब्राह्मण को एक अमर-फल अभि-मंत्रित करके राजा को देने के लिये दिया और आश दिलाई कि राजा उसके दारिद्रय को अवश्य दूर करेगा। ब्राह्मण वह फल जाकर भर्तृहरि के पास ले आया। अभिमन्त्रित किये हुए उस फल को देखकर राजा को अत्यन्त आकर्षण हुआ। अमर-फल के सम्बन्ध में यथार्थ पूछ-ताछ करने पर राजा को विश्वास हो गया कि फल खाने से वह अमर बन जायेगा। तब फल को स्वीकार करके ब्राह्मण को निहाल कर दिया गया।

अब राजा ने विचार किया कि 'यह अमर-फल स्वयं न खाकर यदि पिङ्गला को खिलाया जाय तो अपने को पिङ्गला का यौवन जीते जी जैसा-का-तैसा भोगने को मिलेगा।' अतः राजा ने अमर-फल पिङ्गला को खाने को दे दिया। पिङ्गला ने सोचा कि 'स्वयं फल न खाकर यदि अश्व-पाल को खिलाऊँ तो उसके साथ भोग भोगने में अपने को अत्यानन्द मिलेगा।' अतएव पिङ्गला ने वह फल अश्व-पाल को दे दिया। अश्व-पाल एक नायिका से प्रेम करता था। इसलिए वह उसे फल दे आया। नायिका ने सोचा 'यदि स्वयं फल खाया जाय, तो अपना कुछ कल्याण होनेवाला नहीं है अपितु अमरत्व पाकर वेश्या-वृत्ति में ही समय बिताना पड़ेगा। इससे ऐसा न होकर यदि प्रजा को सदा सुख - शांति देनेवाला राजा इस फल को खाये, तो राजा अमर बनेगा। प्रजा सदैव के लिये सुखी हो जायेगी और अपना भी कल्याण होगा।' यह निश्चय कर नायिका फल लेकर राजा के पास पहुँची। राजा फल देखकर चकित हो गए। पूछने पर पता चला कि अश्व-पाल ने उसे वह फल दिया है। अश्व-पाल को बुलाकर धमकाने से उसने बता दिया कि पिङ्गला के पास से फल पाया था। पिङ्गला ने पहले तो सौगन्ध के साथ कहा कि वह फल खा गई है, लेकिन बाद में उसने स्वीकार किया कि फल अश्व-पाल को दिया गया था।

राजा भर्तृहरि अत्यन्त खिन्न हुए। विक्रम पर अन्याय करने के कारण उनका चित्त घबराने लगा। अमर-फल घूमता-घूमता वापस अपने ही पास आ जाने से 'यह फल अपने लिए ही है' ऐसे दृढ़ विश्वास के साथ उसे स्वयं खा गये। क्रोध और वैराग्य आने से उन्होंने सब वस्त्र फाड़ डाले और राज-पाट सब छोड़-छाड़ चल पड़े। वे गुरु श्रीमत्स्येन्द्रनाथ के आश्रम में आ पहुँचे। वहाँ विक्रम से भेंट हुई। विक्रम से उन्होंने क्षमा माँगी और उनको राज सँभालने के लिए आज्ञा की। श्री भर्तृहरि ने गुरु श्री मत्स्येन्द्रनाथ से उपदेश लिया, ज्ञान प्राप्त किया, 'वैराग्य शतक' लिखा, दिव्य देह धारण की और हिमालय में रहकर २००० वर्षों तक भगवान् महा-शिव की तपश्चर्या की।

'तपश्चर्या के बीच एक बार आप स्वर्ग—मङ्गल ग्रह—देखने चले गए थे। वहाँ का अनुभव आपने 'एके काले गयो हूँ त्रिभुवन-मतां जे इन्द्रना लोक जोवा' की प्रथम पंक्तिवाली कविता में लिखा है। इस कविता में आपने गुजराती भाषा का सारा लालित्य भर दिया है। पाठक उसे अवश्य पढ़ें, ऐसी बिनती है।

अब (सं० १९६०) स्व-उत्थान के लिए भू पर की हुई उनकी तपश्चर्या पूर्ण होनेवाली थी और काल-चक्र का सञ्चालन करने के लिए उन्हें काल-चक्र पर ले जाने का समय भी समीप आ रहा था। साथ ही उनके द्वारा दिव्य देह-धारण करके २००० वर्षों तक की हुई शिव-आराधना की पूर्णाहुति कराने के लिये भगवान् महा - शिव को ही पृथ्वी पर अवतार धारण करने की आवश्यकता थी।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि तपश्चर्या की पूर्णाहुति के लिए भगवान् शिव को अवतार—'गुप्तावतार'—धारण करने की क्यों आवश्यकता थी? क्या वह काम भू पर आये बिना नहीं हो सकता था?

इनका सीधा उत्तर देने में लेखक असमर्थ है। उदाहरण देते हुये इतना ही कहा जा सकता है कि एक लाख वर्ष पूर्व भगवान् नर, भगवान् नारायण और भगवती दुर्गा ने जब 'पुरुष'-पद प्राप्त करने के लिये इस पृथ्वी पर तपश्चर्या की थी, तब उस तपश्चर्या की पूर्णाहुति कराने के लिये महापुरुष भगवान् 'श्री-आदिनाथ' ने श्री दत्त भगवान् का जन्म लिया था। यह उदाहरण इस बात को सिद्ध करता है कि यदि कोई महान् व्यक्ति तपश्चर्या करे, तो उसकी तपश्चर्या की पूर्णाहुति के निमित्त उसके ध्येय याने किसी महा-पुरुष को अवतार लेना ही पड़ता है।

पूज्य बाबाश्री के कथनानुसार कोई भी महा-पुरुष अकेले चिन्तन या इच्छा से विश्व का कोई भी कार्य नहीं कर सकता। ५००० वर्ष पूर्व भारत की ग्लानि भगवान् श्रीकृष्ण केवल इच्छा मात्र से दूर नहीं कर सकते थे; इसीलिये उन्हें पृथ्वी पर 'प्रकटावतार' लेना पड़ा था। तदनुसार श्री भर्तृहरि की शिवाराधना की पूर्णाहुति कराने के लिये भगवान् महा-शिव को 'गुप्तावतार' लेना पड़ा, इसमें शङ्का का अब कोई स्थान नहीं रह जाता।

परम पूज्य महा-शिव ने—याने पूज्य बाबाश्री ने—शरीर धारण करने पर प्रथम रहस्य-पूर्ण जो काम किया, वह था हिमालय जाकर भगवान् श्रीभर्तृहरि की तपश्चर्या की पूर्णाहुति कराना, जो भगवान् महा-शिव के अवतार ग्रहण करने की बात का ही समर्थन करता है।

पूज्य बाबाश्री का शरीर जब १८ वर्ष का हुआ, तब घर में किसी से कहे बिना हिमालय चला गया। वहाँ भगवान् महा-शिव ने भगवान् भर्तृहरि की तपश्चर्या की पूर्णाहुति करा दी और आपका शरीर भगवान् भर्तृहरि को दे दिया। अर्थात् पूज्य बाबाश्री के शरीर में विद्यमान भगवान् महा-शिव के बदले अब भगवान् भर्तृहरि रहने लगे। फिर भगवान् भर्तृहरि के दिव्य शरीर का विसर्जन प्राय: २० वर्ष के बाद संवत् १९८१ के नवरात्र बीच किया गया। लगभग २१०० वर्ष से अस्तित्व में आये हुये भगवान् भर्तृहरि, जिन्होंने मरना या मूर्छित अवस्था में पड़े रहना आज तक जाना नहीं, अब कितने बड़े शक्ति-शाली महा-पुरुष हैं, यह निम्न-लिखित भजन से ज्ञात होगा—

शक्ति गति लीला अपरम्पार जाणतो कोण विश्व संसार।
तृण थी परवत परवत राइ रेणु रवि रचनार।
कीट भृङ्ग थी अमर देव नर विष्णु रुद्र करनार ।। शक्ति० ।।
काले साधारण नर तपसी तप मख आदरनार।
आज अखिल बहु सप्तक - मय केयूर - नाथ पद पार ।। शक्ति० ।।
श्रीशमिक भरतरि नृप त्यागो राज - पाट फरनार।
श्रीमत्स्येन्द्र ज्ञान - गुरु पामी शिव तप आदर नार ।। शक्ति० ।।
आज केन्द्र पर ईश - रूप हरि पार विश्व - धर सार।
एक देव केयूर ईश - पद सप्तक शत रचनार ।। शक्ति० ।।
जय शमिक जय दिव्य देव पर जय अमोघ पर तार।
'मोती' भाव भनित भव गुरु जय ब्रह्म जोत करतार ।। शक्ति० ।।

उपर्युक्त भजन में जो 'श्रीशमिक' नाम आया है, वह भगवान् भर्तृहरि को, जब वे तपश्चर्या के बाद सप्तकाधीश-पद पर नियुक्त किये गये, तब भगवती तारिणी मा ने प्रदान किया है। अब तो आप केयूर-पद पर हैं। आप केयूराधीश कहे जाते हैं।

६ वर्षों तक हिमालय, गिरनार, आबू और सारे भारत का भ्रमण करने के बाद भगवान् भर्तृहरि (पूज्य बाबाश्री का शरीर) ने, जब स्वयं राजा थे, उस समय के सम्बन्धियों और बाद के शिष्यों को ढूंढ़ निकालकर उन सबको कल्याण का मार्ग बताया। इतने बड़े जिन महापुरुष का प्रकृति ने महत् कार्य के लिये उत्थान किया था, उनका अधिक समय तक पूज्य बाबाश्री के शरीर में ठहरना सम्भव नहीं था। अतएव कुछ समय के बाद जब शिष्यों को ढूंढ़कर उन सबको मार्ग दिखाने का कार्य कुछ अंशों में समाप्त हुआ; तब किसी दूसरे महा-व्यक्ति ने शरीर का भार लिया और भगवान् भर्तृहरि पधार गये। बाद में तो जब-तब भू पर से विश्व का कार्य करने के लिये बड़े-बड़े महा-पुरुष शरीर का भार लेते हैं और छोड़ते हैं।

पूज्य श्रीद्वारा लिखे हुये १००० से अधिक भजन भी शरीर में रहनेवाले विभिन्न महापुरुषों के लिखे हैं। अतएव कई भजनों के अर्थ समझना मानवीय मस्तिष्क के बाहर की बात है। पूज्यश्री ने एक भजन में लिखा है **'गजब सीना हमारा है, चढ़े जिस देव की कुरसी'** याने यह शरीर आश्चर्य-मय है। जो देव उसमें पधारते हैं, उनकी वह कुरसी बन जाता है। पूज्यश्री के शरीर में दूसरे देव-देवियाँ पधारती हैं, इस बात का समर्थन उक्त पंक्ति करती है।

पूज्यश्री के शरीर में भगवान् श्रीशरभ, भगवान् श्रीमयङ्क (महा-शिव), भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् विडाल, भगवान् केयूराधीश (भगवान् भर्तृहरि, बाद में भगवान् शमिक), दश महाविद्याएँ, अष्ट भैरव और अन्य सप्तकों के तथा शनि के महा-पुरुष पधारते हैं। शरीर में होनेवाले परिवर्तनों का ज्ञान भक्तों को कभी-कभी संज्ञा से, स्वभाव से, बातचीत से और जताने से होता है और अधिकतर नहीं भी हो पाता।

यह पृथ्वी भू-सौर की भू याने इस सप्तक का निम्न-तम अन्तिम गोला है। अतएव ये सब महा-पुरुष इस गोले पर से सप्तक के बाहर से आती हुई तमावृत ऊर्मियों का प्रपात-द्वारा अमृतीकरण करते हैं, या स्वयं गरलमशनं होने के कारण ऊर्मियों को शरीर पर ले लेते हैं याने उन्हें शरीर पचा जाता है। ऐसे अनेक प्रपात उन महा-पुरुषों ने पूज्यश्री के शरीर में रहकर किये हैं। प्रपात करने के लिये समुद्र या निर्जन जंगल या पहाड़ पसन्द किये जाते हैं, जिससे ऊपर से उतरती हुई तमावृत ऊर्मियाँ न किसी व्यक्ति पर गिरें और न कोई उनका भोग बने। जब-जब ऐसे प्रपात होते हैं, पूज्यश्री के शरीर में कोई-न-कोई रोग पैदा हो जाता है।

अवतार और प्रपात का अर्थ क्या है, इस सम्बन्ध में पूज्यश्री द्वारा दिया गया प्रवचन यहाँ लिखना सङ्गत होगा—

हिन्दू शास्त्र अवतार मानता है। भगवान् श्रीकृष्ण अवतार माने गये हैं। कोई बहुत ही बड़ा व्यक्ति यदि पृथ्वी पर जन्म ले, तो वह अवतार कहा जाता है। ऐसा व्यक्ति अत्यधिक शक्तिशाली होता है। अवतार भू पर रहकर क्या काम करते हैं अथवा उन्हें क्या काम करना पड़ता है, यह संसार के लोग नहीं जानते।

संसार के सभी लोग कुछ-न-कुछ विचार करते हैं। ये सारे विचार प्रायः एक दूसरे को धोखा देने, पराया बिगाड़ कर अपना स्वार्थ-साधन करने या ईर्ष्या-द्वेष इत्यादि के होते हैं। प्रत्येक मनुष्य दूसरे के विरुद्ध विचार करता है और ऐसे विचारों की प्रत्यूर्मियाँ दिन-प्रतिदिन अवकाश में फैलती-फैलती घन बन जाती हैं और समय पाकर उनकी रगड़ पृथ्वी की उत्पत्ति एवं स्वयं पृथ्वी का भी क्षय कर सकती है। अवकाश में इस प्रकार जमा होनेवाले विष को प्रपात द्वारा पी जाने के लिये या उसका अमृतीकरण करने

के लिये अत्यधिक शक्ति-शाली भगवान् महा-शिव या भगावन् श्रीकृष्ण-जैसा व्यक्ति अवतार लेता है। भगवान् महा-शिव को इसी कारण 'गरलमशनं' नाम दिया गया है।

ऐसे महापुरुष अवतार धारण करके पृथ्वी की उत्पत्ति-क्रिया को बचा लेते हैं, नहीं तो पृथ्वी उपर्युक्त प्रत्यूर्मियों की रगड़ में कब की समाप्त हो जाती। पुराण में कथा है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने गारुड़ नृत्य करके विषम कालिय नाग के एक-एक फण को कुचल कर नाथ दिया। इसका अर्थ यह है कि भगवान् ने गारुडी-नृत्य के साथ प्रपात करके अवकाश में फैली हुई विषय-ऊर्मियों को नाथ कर अंकुश में रखा, जिससे वे पृथ्वी की सृष्टि को धक्का न पहुँचायें।

विचारों की ऊर्मियाँ केवल इस पृथ्वी पर ही जमा होती हों, ऐसा नहीं है। जिन-जिन ग्रहों में जीव है, वहाँ ऐसी ऊर्मियाँ कभी-न-कभी जमा हो जाती हैं और उन्हें स्वच्छ करने के लिए उक्त महापुरुषों को जन्म लेना पड़ता है। महापुरुषों का तो किया-लक्ष्य होता है। भगवान् श्रीमयङ्क को जहाँ आवश्यकता हो, वहाँ एक या एक से अधिक ग्रहों में एक साथ शरीर धारण करने पड़ते हैं। शान्ति से चुपचाप बैठने या आराम से पड़े रहने का समय ही नहीं मिलता।

एक बार किसी ने पूज्यश्री से प्रश्न किया कि 'आपने जिसका हाथ पकड़ा है, उस व्यक्ति को क्या आप छोड़कर चले जा सकते हैं?'

उस समय पूज्यश्री के शरीर में कौन विराजमान थे, इसका पता प्रश्न करनेवाले को नहीं था लेकिन तुरन्त उत्तर मिला—'मैं प्रकृति हूँ। मैं दोनों काम करती हूँ। पकड़ती भी हूँ और धक्का भी देती हूँ। धक्का देने पर व्यक्ति खड़ा रह सका, तो रह गया और नहीं, तो गया। उसका भाग्य हो और फिर आये, तो अलग बात है लेकिन ऐसा समय फिर आये या न आये।'

उपर्युक्त उत्तर से प्रश्न करनेवाले को निश्चय हो गया कि शरीर में उस समय स्वयं भगवती श्रीदुर्गा माँ विद्यमान थीं। इस प्रसंग का इस स्थल पर उल्लेख करने का आशय यह है कि श्रीदुर्गा-सप्तशती के ११ वें अध्याय में पूज्या मां ने कहा है—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदावतीर्याऽहं करिष्याम्यरि-संक्षयम्॥

उक्त प्रसंग से क्या यह प्रतीत नहीं होता कि यदि भगवान् श्रीकृष्ण के अभय वचन **'यदा यदा हि धर्मस्य'** का पालन करने के लिए पूज्यश्री ने अवतार लिया था, तो फिर कहीं उन्होंने ही सप्तशती के उपर्युक्त वचन के अनुसार भगवती माँ का कार्य करने के लिये भी अवतार न लिया हो? अर्थात् माँ के कार्य को पूर्ण करने का उत्तरदायित्व भी पूज्यश्री पर ही था।

पूज्य बाबाश्री ने अवतार क्यों लिया और वे कितने महान् हैं, यह ज्ञात होने पर पाठकों को यह जिज्ञासा हो सकती है कि पूज्यश्री ने संसार के लिए क्या किया? ऊपर बताया जा चुका है कि पूज्य बाबाश्री का गुप्तावतार था, अतएव आपके सभी कार्य गुप्त ही हैं। कोई कार्य करके उसकी सूचना किसी को भी न देनेवाले व्यक्ति ने क्या काम किया, इसका परिचय जगत् को कैसे दिया जाय?

फिर भी पूज्यश्री के निकट रह कर आपको अवतार माननेवाले—अच्छे काम में सबका भाग है, इस हेतु नहीं किन्तु—जो कुछ थोड़ा-सा जानते हैं, उसके आधार पर कह सकते हैं कि भारत की स्वाधीनता के लिये हम विशेष कर पूज्यश्री की प्रार्थना के आभारी हैं। आपने (भगवान् भर्तृहरि ने) सं० १९७३ में भगवान् महा-शिव की स्व-लिखित आरती में **'स्वाराज्यं प्रति नय हे हिन्द प्रजा तातः'** इन शब्दों में प्रार्थना की है। भगवान् महा-शिव के स्तुति-परक एक प्रभात-गीत में आपने लिखा है **'भरत भूमि ने दया करी स्वतन्त्रता प्रदान।'** भगवान् श्रीकृष्ण के स्तुति-रूप एक भजन में भी आपने लिखा है—'यह

देश जाग गुण गावे, भारत स्वतन्त्र हो जावे।' इसके अतिरिक्त आपने स्वराज्य-प्राप्ति के लिये सं० १६८६ में दो यज्ञ किये थे, जिनके करने में ३।। मास लग गये थे। 'इत्थं यदा यदा बाधा' और 'शरणागत-दीनार्त' इन दो श्लोकों के सम्पुट के साथ दो बार सहस्र-चण्डी यज्ञ किया गया था और अंग्रेजों को लक्ष्य कर 'ह्रां ह्रूं क्रीं लभन्तो देश-वासिनो स्वदेशमिण्डयामिदम्, यूयं गच्छतु इङ्गलैण्डम् यदि व्यापारमिच्छथ' अर्थात् 'देशवासी इस स्वदेश 'इण्डिया' को प्राप्त करें और तुम लोग यदि व्यापार की इच्छा रखते हो, तो इङ्गलैण्ड को चले जाओ', इस प्रकार मानो 'भारत छोड़ो' (क्विट इण्डिया) के भावार्थ वाले सङ्कल्प के साथ आहुतियाँ दी गई थीं।

पाठक पूछ सकते हैं कि जब पूज्यश्री अवतार ही थे, तब उन्हें यज्ञ करने की क्या आवश्यकता थी? इसका उत्तर यही है कि अक्षर-स्थान को प्राप्त कोई भी महा-पुरुष यदि किसी के लिये कुछ भी इच्छा रखता हो, तो उसके लिये वह अपनी जेब से खर्च नहीं कर सकता। महा-पुरुष को किसी का यदि भला करना होगा, तो उस कार्य के लिये वे प्रकृति से प्रार्थना ही करेंगे। विश्व के कार्यार्थ पूज्यश्री के शरीर में पधारनेवाले सभी महा-पुरुषों पर भारत की ग्लानि दूर करने का उत्तर-दायित्व था, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। पूज्यश्री का अवतार भगवान् महा-शिव ने लिया था और उनके शरीर में रहकर भगवान् भर्तृहरि ने यज्ञ किये थे क्योंकि आप अब भगवान् श्रीकृष्ण और भगवती माँ के, जिन्होंने अभय-वचन दिये थे, प्रतिनिधि बनने के योग्य हैं। आपने भारत में राज्य किया था। आप भारत का कल्याण करते थे। अतएव आपने भारत को स्वतन्त्रता प्रदान कराने के लिये प्रकृति से उक्त यज्ञ द्वारा प्रार्थना की थी, यही मानना उचित होगा।

पूज्यश्री ने इलाहाबाद में ता० १-३-४७ के दिन श्रीपण्डित शिवनाथ काटजू और श्रीपण्डित देवीदत्त शुक्ल के समक्ष कहा था कि 'अंग्रेज लोग, जैसा उन्होंने कहा है, हिन्द को छोड़कर चले जायँगे लेकिन हिन्द पर अवकाश में अब भी जमा पड़ी हुई तमावृत दीखती ऊर्मियाँ सूचित करती हैं कि हिन्दुस्तान के टुकड़े-टुकड़े होने चाहते हैं। योगी लोग प्रपात करके उस विष का अमृतीकरण कर सकते हैं, तो भी राज-द्वारा क्षेत्र में यदि भूल हुई, तो हिन्द को उस भूल का भोग बनना पड़ेगा।'

उपर्युक्त चेतावनी के पाँच महीने बाद हिन्द का बँटवारा हुआ। कोई भी देशी राज्य भारत के साथ सम्मिलित होने को तैयार न था। पूज्यश्री नहीं चाहते थे कि हिन्द के टुकड़े-टुकड़े हो जायं। प्रारम्भ से ही वे अखण्ड हिन्द चाहते थे। हिन्द पर अवकाश में जमा तमावृत ऊर्मियों का पूज्यश्री ने प्रपात-द्वारा अमृतीकरण किया या नहीं, यह लेखक नहीं जानता। लेकिन १४ अगस्त, १६४७ के दिन रात को ११।। बजे और बाद में प्रति-वर्ष अपने स्थान में माँ की स्थापना के समक्ष ध्वज-वन्दन करके वे 'जय संयुक्त हिन्द' की घोषणा करते रहे। अब भारत कितने अंशों में संयुक्त हुआ है, यह पाठक लोग अच्छी तरह जानते हैं।

पूज्यश्री ने लोगों के कल्याण के लिये बहुत कुछ लिखा है। उसमें 'भैरवोपदेश' एक अनूठी पुस्तक है। इसमें गीता से भी अधिक लोकोपयोगी अनुपम उपदेश किया गया है। ईश्वर-प्राप्त्यर्थ जैसा व्यावहारिक मार्ग 'भैरवोपदेश' में बताया है, वैसा गीता में नहीं मिलता। उदाहरण के लिये 'भैरवोपदेश' में कथित 'लययोग', 'दिव्य-योग' और 'पूर्ण-ज्ञान-योग' तथा उनमें बताई गई साधना गीता में कहीं नहीं दिखती। गीता के 'क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-निरूपण योग' में भगवान् श्रीकृष्ण ने बताया है कि क्षेत्र यह देह है और सर्व क्षेत्रों में विद्यमान क्षेत्रज्ञ जीवात्मा अर्थात् स्वयं भगवान् हैं। इसका समर्थन करते हुये गीता के अध्याय १६, श्लोक ७ में भगवान् श्रीकृष्ण ने बताया है कि देह में विद्यमान जीवात्मा मेरा ही अंश है। यहाँ उस विषय की चर्चा करना उचित नहीं है।

पूज्य बाबाश्री ने 'भैरवोपदेश' में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के साथ क्षेत्र-पाल का भी अस्तित्व बताया है। आपने बताया है कि क्षेत्र यह देह है। क्षेत्रज्ञ प्रत्येक देह में विद्यमान जीव है और क्षेत्र-पाल स्वयं भगवान् हैं। यह बताने का आशय यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा किये हुये उपदेश में घटा बढ़ी वही कर सकता है, जो वैसा करने में सचमुच समर्थ हो। क्षेत्र-पाल जो भगवान् हैं, उनके अतिरिक्त यह कौन बता सकता है कि क्षेत्र-पाल क्या करता है?

पूज्य बाबाश्री की इतनी महत्ता बताने के बाद यह कहना कि पूज्यश्री त्रिकाल-ज्ञानी थे, अनावश्यक है। इतने बड़े महा-पुरुष त्रिकालज्ञ होने ही चाहिये। पाठक कह सकते हैं कि जब पूज्यश्री इतने बड़े महा-पुरुष थे, तो उनका परिचय शिष्यों ने संसार को क्यों न दिया? यदि दिया होता, तो संसार भी पूज्यश्री से लाभ उठाता। किन्तु (महा-त्यागी होने पर भी) गृहस्थ-जैसे दिखाई देनेवाले और जैसा स्वामी श्री रामकृष्ण परमहंस ने कहा है कि महात्मा चूहे की तरह पराये घर में ठहरता है, उसी प्रकार पराई गृहस्थी में ठहरकर (बेकाम न बैठकर) साग - भाजी आदि (अपने शिष्यों को कल्याण से भरी हुई ऊर्मियों का भोजन कराने के लिये) रसोई बनानेवाले या अपने स्थान में सारे दिन माता की स्थापना के सामने झूले पर बैठे (जो मन की स्थिरता का द्योतक है) या विश्व के कार्य में (दत्त-चित्त बनकर) पड़े रहनेवाले या (मन को बेकार सोचने न देनेवाले के लिये) अकेले अथवा चार-छः व्यक्तियों के साथ ताश खेलनेवाले या 'गगान दइ रे'—'ददान दइ रे' जैसे निरर्थक प्रतीत होते हुए भी गूढ़ार्थ से भरे हुए अनेक वचन सारे दिन बोलते रहनेवाले और जिसकी श्रद्धा लम्बे समय तक टिक न सके, ऐसे अवांछनीय व्यक्ति की श्रद्धा पर ठोकर मारकर भगा देनेवाले एक साधारण भक्त जैसे दीखते हुए भी प्रशान्त, प्रसन्न-वदन, प्रभावशाली और कान्तिमान् पूज्यश्री को जब इस लेखक जैसे दिन-प्रतिदिन जानेवाले जैसा जानना चाहिये, वैसा न जान सके, तो बाहर के आनेवाले को यदि आपका परिचय अवतार-रूप में दिया जाय, तो वह लेखक को मूर्ख सिवा और क्या कहेगा!

भगवान् श्रीकृष्ण तो प्रकटावतार थे, फिर भी आपको भगवान् के रूप में केवल रुक्मिणी, द्रौपदी, अक्रूर, उद्धव, भीष्म और विदुर जैसे कुछ १०-१२ व्यक्तियों से अधिक लोग पहचान नहीं सके थे। तो फिर पूज्यश्री के गुप्तावतार को कौन और कैसे पहचान सकता है? और वह बात संसार में कही भी कैसे जाय!

अन्त में स्व-सुखार्थ इतने बड़े महापुरुष का इतने कम शब्दों में वर्णन करके लेखक अपने मूढ़ होने की बात को स्वीकार करता है। कारण आप ही ने द्व्यर्थक भाषा में लिखा है—**'मोती यदि वर्णवा साहस करे ते मूढ छे।'** फिर भी परमपूज्य श्रीगुरुदेव दया करके इस लेखक को—**'तव चरण पङ्कज भक्ति ध्याने जे रहे ते गूढ छे'**—इस दूसरी पंक्ति के अनुसार स्व-चरण-कमल में भक्ति-ध्यान से रखकर मूढ़ता मिटा गूढ़ बनायेंगे, ऐसी नम्र प्रार्थना है।

ॐकार

['चण्डी' वर्ष ७ : सम्वत् २००४ वि०—सन् १९४७ : सं० ३]

ओम-कार शब्द-सार, एक शब्द शब्द-पार ।। टेक ।।

अक्षर दो अर्थ-जात, गावत जय तात मात । सेवत सुर-गण अनन्त, मन्तर बड़ विश्व-तार ।।१।।

अक्षर इक प्रथम सार, स्वर-सर वाणी-प्रचार । जा बिन नहिं बोल सकत, पक्षि जीव-निकर कार ।।२।।

रज-गुण पर-ब्रह्म देव, सृष्टि-कर्म उपम एव । व्याप क स्वर-रूप देव, अखर-ब्रह्म निर्विकार ।।३।।

अक्षर दूजो उकार, गति-मय रूपक अकार । सत्व-सार निराधार, पोषण कर विष्णु-सार ।।४।।

अर्थ-मातरा प्रसार, लय-विधान कर्म-कार । अनुस्वार विन्दु-सार, विश्व-नाथ तम अधार ।।५।।

तारक यह मन्त्र-सार, नाम विश्व-तार पार । 'मोती' मति-गति सुधार, दिव्य जाते करत पार ।।६।।

श्री चण्डिका

['चण्डी' वर्ष ७ : सम्वत् २००४ वि०—सन् १९४७ : सं० ४]

जयति श्रीचण्डिका चण्डि चण्डीश्वरी, चण्ड-कर्मा महा-शक्ति-धर्मा ।
गुण-त्रयाधार त्रय-गुण परा-मर्षिणी, कर्षिणी स्तम्भिनी दिव्य वर्मा ।। १ ।।
मारिणी मोहिनी शुम्भ-संहारिणी, रक्त-बीजादि भय-हारि कर्मा ।
जयति विश्वेशि सुर-रक्षिणी पालिनी, जन्म-दायिनि विधायिनि वि-कर्मा ।। २ ।।
शोषिणी प्लाविनी शक्ति पर-देवता, अगण गुण कर्म-कालिनि अ-कर्मा ।
विश्व - विश्वेश्वरी सर्व - सर्वेश्वरी, एक आनन्द - दायिनी सु-शर्मा ।। ३ ।।
रण-धरा जय-प्रदायिनि परात्पर-परा, विश्व-क्षय-कर्म पर-शान्ति-धर्मा ।
भय-भया भय-वहा पूर्ण करुणाकरा, 'मोती भव-तार गुण सार-कर्मा ।। ४ ।।

स्तवन

['चण्डी' वर्ष ७ : सम्वत् २००४ वि०—सन् १९४७ : सं० ५]

माता.........पाहि मां ! जगपा, सुखदा, निज जन-पालिका ।
अन्न - वस्त्रदा, रक्ष मां ! ....पाहि मां ।। माता० १ ।।
दिव्य-ज्ञानदा, सु-ललित-रूपिणी, पुण्य-पानदा, रस-मय रागिनी ।
सु- हासिनी, शिव - वर - दायिनी, पारदा वरदा पाहि मां ।। माता० २ ।।
भव्य-मानदा, अलख-निरञ्जिनी, भक्त-भक्तिदा भव-भय-भंजिनी ।
सु-पालिनी, निज-कर-धारिणी, मोति-पा भक्त-पा, रक्ष मां ।। माता० ३ ।।

प्रवचन

शून्य परिचय

प्रस्तुत-कर्त्ता : श्री रमाशङ्कर पण्डया

('चण्डी' वर्ष ७ : सम्वत् २००५ वि०—सन् १६४८ ई० : सं० ६)

साधारण बुद्धिवाले किसो व्यक्ति से पूछा जाय, तो वह यहो बतलायेगा कि शून्य माने खाली। कोई वस्तु हमारे सामने रखी हुई है, वह यदि वहाँ से उठा ली जाय, तो जगह सूनी हो जायगी। इसी प्रकार वियोग में भी सूना भासता है। कुछ था, जो अब नहीं है। फिर भी जो बचा, वह शून्य कहा जाता है।

इस नकार-युक्त (निगेटिव) परिभाषा को यदि हम सत्य मानें, तो नाना प्रकार के भ्रम उत्पन्न होते हैं। एक व्यक्ति के सामने से यदि कोई वस्तु उठा ली जाय, तो वह उस स्थान को सूना कह सकता है परन्तु दूसरा व्यक्ति, जिसके सामने से वह नहीं उठाई गई है, वह वहाँ उस शून्य को नहीं देख सकता। तात्पर्य यह है कि शून्य इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। तब शून्य है क्या ?

पदार्थ-विज्ञान को नाना प्रकार से व्यक्त होती हुई घटनाओं को शोध करते हुए, कुछ तो ठोस पदार्थ दिखे, कुछ तरल और कुछ वायविक। इन सबों में परिणमन दिखाई दिया, जिसके साथ उष्णता, काश, विद्युत् आदि गतियाँ बाहर प्रकट होती हैं। गति क्या है, इसकी शोध करते, ऐसा पता लगा कि वह किसी प्रकार का प्रकम्प है, जो छोटी-बड़ी ऊर्मि-वत् प्रसरता है। वह प्रसरण समय इत्यादि से मापा जा सकता है। शब्द की गति पवन में ही है। पवन-शून्य यदि उत्पन्न किया जाय, तो शब्द उसका भेदन नहीं कर सकता परन्तु काश पवन-शून्य का भेदन कर सकता है। विद्युत् की ऊर्मि भी पवन-शून्य का भेदन कर सकती है।

पृथ्वी के ऊपर ३० मील तक ही पवन है, आगे नहीं। तब भी उस शून्य का भेदन कर सूर्य से काश आता है और 'राडार' नामक यन्त्र से हम विद्युत्-सन्देश अन्य ग्रहों पर भेज उसका उत्तर पा सकते हैं। प्रश्न यह उठता है कि ऊर्मि किसमें से जाती है ? उसका प्रसरण किसमें होता है ?

पदा -विज्ञान शून्य को 'ईथर' के नाम से पहचानता है। इस 'ईथर' के कुछ नियम भी वैज्ञानिकों के हाथ लगे हैं, जिससे शून्य मात्र नकार-वाचक नहीं रह जाता। इसी शून्य में सूर्य-मण्डल का प्रलय होता है और पुनरुत्पत्ति भी होती है। ब्रह्माण्ड महा-ब्रह्माण्ड भी इसी के खेल हैं। यही पिण्डाण्ड (व्यक्ति-देह) में तथा अखण्ड में नाना प्रकार के अचम्भे हमें दिखाई देने का एक कारण है, जिनका उदाहरण हमें व्यक्ति की जाग्रति, मूर्छादि व अणु-बम-विस्फोट आदि में मिलता है।

यह 'ईथर' क्या वस्तु है ? इसका क्या स्वभाव है ? इसके क्या नियम हैं ? इन्हीं बातों का अध्ययन वैज्ञानिक व अध्यात्म-तत्त्व-दर्शी करते हैं। भगवान् बुद्ध ने इसी को सर्वोपरि बतलाया है और इसी में लय हो जाने की सलाह दी है। अन्य तत्त्व-दर्शी इसके परे भी कुछ बतलाते हैं। यथा—आत्म-तत्त्व, विद्या-तत्त्व, शिव-तत्त्व।

पदार्थ-विज्ञान-शास्त्र इस विषय में इतना कम जानता है कि यहाँ से १०० मील की ऊँचाई पर वातावरण का दबाव १/०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ०००, ००० डाइन प्रति-वर्ग सेण्टीमीटर होनेके कारण उसका कुछ वर्णन हो नहीं हो सकता, यह कहकर उसे छोड़ दिया जाता है, परन्तु प्रकृति का कारखाना उसी में तो है। वहीं से तो सृष्टि-बीज जन्मता है।

न जाने कैसे इसका अध्ययन हमारे पूर्वजों ने कर इसे एक 'तत्त्व' रूप से वर्णन किया। तत्त्व का अर्थ होता है (तत्—वह) वह पना। मैं और तू के बीच में सदैव कुछ-न-कुछ होगा। व्यवहार में स्थूल तरल पदार्थ होंगे या कुछ गति, ऊर्मि वा शून्य। यदि शून्य न हो, तो 'मैं' और 'तू' एक हो जाएँगे परन्तु शून्य न हो, ऐसा साधारणतः तो हो ही नहीं सकता। इसीलिये सूक्ष्म-से-सूक्ष्म रूप में भी 'मैं' और 'तू' को जो पृथक् रखनेवाला कुछ तत्त्व है, वह शून्य है। इस तत्त्व का अध्ययन यदि अपने (पिण्डाण्ड) में किया जाय और उसका स्वभाव व नियम ब्रह्माण्ड, अण्वण्ड व अन्य खण्डों में भी अन्वेषण कर पाया जाय, तो शायद सृष्टि-मूल की कुछ झलक भी दिखाई दे।

हमें अध्ययन करने लायक शून्य अपने मन में ही मिलता है क्योंकि हमारे विचारों में सब तत्त्वों के गुण मौजूद हैं। विचार सङ्कुठित, सम्मिलित व सम्बन्धित भू-तत्त्व के नियमानुसार होते हैं। जिस प्रकार अणु-पारस्पर्य (ऐफिनिटी) है, उसी प्रकार विचार-पारस्पर्य भी है व तन्मात्राएँ भी सम्मिलित हो पदार्थ का भान कराती हैं। विचार-प्रवाह जल-तत्त्व के नियमानुसार होता है। उसी को रस कहते हैं। परिणमन अग्नि-तत्त्व के नियमानुसार होता है, जिससे नाना प्रकार का प्रकम्पन व ऊर्मि एक व्यक्ति दूसरे के ऊपर फेंकता है। मनोवेग वायु-तत्त्व के नियमानुसार जागता है। प्रिय पदार्थ के तिरोभाव में वही मन सूना बन जाता है, व उसी मन में उस विगत शून्य में से पुनः सृष्टि कर अपने प्यारे को पाने की शक्ति भी है। सूना मन अत्यन्त चञ्चल होता है—स्थिर नहीं। उसके ऊपर यदि दबाव, जबर्दस्ती स्थिर करने का, डाला जाय, तो वह मूर्छित हो जाता है।

पहले यह ढूंढ़ना चाहिये कि सूने मन का शून्यत्व कहाँ है और वह किन नियमों के अनुसार व्यवहार करता है। ठीक जिस प्रकार वायुयान जैसे-जैसे ऊँचा उड़ता है, (भू से १० मील ऊपर), हवा कम घनी होती जाती है और ऊँचाई बढ़ने से, वायु-संघर्षण कम हो उस यान की गति बढ़ जाती है, उसी प्रकार दुःखादि का सामना पाकर सूना मन हलका हो, उठ कर सूक्ष्म वातावरण को अनुभव करता हुआ अधिक गति-मानत्व (चाञ्चल्य) का अनुभव करता है।

वायुयानी यदि यहाँ के दबाववाली घन-हवा अपने साथ न ले जाय, तो १० मील की ऊँचाई पर, उसके शरीर के अन्दर की हवा बाहर का दबाव कम हो जाने के कारण शरीर फाड़कर बाहर आ जायगी। पहले रक्त बहने लगता है। फिर मूर्छा व फिर मृत्यु। शून्य में गति का यह नियम है।

भू-लोक की हवा के बाहर भी भू का गुरुत्वाकर्षण नहीं छोड़ता। यदि उसके परे जाया जाय, तो चन्द्र-लोक का आकर्षण वहाँ खींच लेता है। यदि छटककर उससे बचे, तो अन्य ग्रहों का व सूर्य का आकर्षण सम्मुख होता है। इन गुरुत्वाकर्षणों के बीच में यदि कोई विमानी यहाँ से जीवन की सब सामग्री लेकर जा भी सके, तो उसे स्थिरता कहाँ? वह किसकी शरण ले?

ठीक यही हाल मन का है। सदा सर्व-शून्य में भी वह चाञ्चल्य और गति को नहीं छोड़ सकता। शून्य में पहला विघ्न है दबाव, दूसरा गुरुत्वाकर्षण। इन दोनों को विजय कर ही शून्य में स्थिरता मिल सकती है, जिससे जीवन-मूल का कुछ भी अध्ययन किया जा सके।

वैज्ञानिक लोग गुब्बारे में जाकर 'कास्मिक' रे (रश्मि) का अध्ययन उक्त प्रकार करते हैं। इससे उनको अणु-विस्फोट की सिद्धि पाने की आशा रहती है। योगी प्राण की सहायता से शून्य में जाकर बीज-विस्फोट-सिद्धि की आशा रखते हैं, परन्तु शून्य दोनों को सताता है। वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता। दबाव की सूक्ष्मता व गुरुत्वाकर्षण बहुत सताते हैं और गिराते हैं। भू पर पुनः उतरना पड़ता है, जन्मना पड़ता है। शून्य-वेध कैसे हो?

गुब्बारे में उड़नेवाले लोग अपने साथ रेती के बोरे भरकर ले जाते हैं। उसे वे 'बेलास्ट' कहते हैं। यदि गुब्बारा वायु (गैस) निकल जाने से गिरने लगे, तो यह रेती का बोरा ऊपर से छोड़कर गिराने से गुब्बारा हलका हो जाता है और फिर ऊपर को चढ़ने लगता है। ठीक यही हाल 'त्याग' का है। त्याग में पावन गुण है। यदि उसे जबर्दस्ती करना पड़े, तो दुःख व श्मशान-वैराग्य को जगाता है। यदि स्वेच्छा से करे, तो सूक्ष्मत्व को देता है और अन्य प्रकार से सामने आनेवाले दुःखों व आकर्षणों से भी बचाता है। वैराग्य व्यक्ति को उठा अवश्य सकता है, परन्तु उस सूक्ष्म शून्य में जीवन की सामग्री नहीं दे सकता। इसलिए अकेला वैराग्य कभी-न-कभी अपनी असमर्थता प्रकट कर ही देगा। फिर भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि उठने (उत्थान) का कारण एक-मात्र वैराग्य ही है।

ऊपर उठनेवाले शून्य-गामी व्यक्ति को दो विघ्नों का सामना करना पड़ता है। यथा—

१ **दबाव** – यह अपने अन्दर से उत्पन्न होता है। विचार मात्र शून्य में जाते ही फटने लगते हैं व मन का चांचल्य बढ़ जाता है।

२ **भू तथा अन्य ग्रहों के आकर्षण**—ये आकर्षण उसे स्थिर नहीं रहने देते और नाना प्रकार की सिद्धियों का स्वरूप लेकर उसके सम्मुख होते हैं।

इन दोनों से बचने का एक ही उपाय है। अपने हृदय में श्रीप्रभु के चरणों का सतत चिन्तन। एकाग्रता के साथ-साथ अनुराग, भक्ति व आकर्षण अन्दर होने के कारण बाहर का आकर्षण नहीं सताता। दोनों आकर्षण लड़ जाते हैं और धीरे-धीरे दशों दिशाओं के आकर्षण में भी व्यक्ति स्थिर रह सकता है। विचारों के फटने से जो चाञ्चल्य उत्पन्न होता है, वह भी चरण-भाव में लय होकर व्यक्ति को उन्नति के मार्ग पर ले जाकर जीवन-मूल का परिचय कराता है।

वैराग्य व भक्ति दोनों मिलकर व्यक्ति को भव-सागर से तारते हैं। अब प्रश्न यह रह गया कि दोनों कैसे उत्पन्न हों?

यदि किसी व्यक्ति को उठाकर शून्य में रख दिया जाय, तो वह या तो आत्म-हत्या कर डालेगा या शून्य में मनो-सृष्टि करके उस पर राज्य करेगा अथवा उसका गुलाम बन जायगा। एकान्त कैद (सॉलिटरी कन्फाइनमेंट) एक कड़ा दण्ड समझा जाता है। रौबिन्सन क्रूसो राज्य करने का दूसरा उदाहरण है (आई ऐम दि मास्टर ऑफ ऑल आई सर्वे)।

मन स्वभाव से शून्य को पसन्द नहीं करता। उसे तो प्रपञ्च ही पसन्द है। जबर्दस्ती किसी पर वैराग्य लाद दिया जाय, तो वह उसे छोड़ देना चाहेगा। सुख की आशा त्याग नहीं करने देती। इस कारण से भी श्रीप्रभु-चरणों से माँगना ही पड़ता है।

यही हाल भक्ति का है। कौन भक्ति चाहता है? सुख का भक्त जीव श्रीप्रभु-चरणों की भक्ति क्यों करने लगा? उसमें से उसे क्या मिलेगा?

मन ने तो कसम खाई है कि मुझे जब जहाँ जैसे अच्छे-से-अच्छा व अधिक-से-अधिक सरल मजा मिले, वहीं मैं जाऊँगा। मजा क्षणिक है। इससे मन चञ्चल ही रहता है।

शिक्षण, सत्सङ्ग व दुःखादि-जनित शून्य के अनुभव से, अन्य मजे के साथ कभी श्रीप्रभु-चरण के मजे का भी अनुभव हो जाता है। तब मन में उसे पुनः, अधिकाधिक, सर्वत्र, सदैव व पूर्ण रूप से पाने की इच्छा धीरे-धीरे प्रकट होती जाती है। तब वह मुमुक्षु बनता है और उसके लिये सब कुछ—अपने आपको भी—छोड़ने को तैयार हो मृत्यु का सामना करता है। यह जबर्दस्ती नहीं कराया जा सकता। भाव उठाता है। इसका वर्णन भी मीरा ने किया है—'अँसुवन जल सींच, प्रेम बेल बोई।'

भाव की उत्पत्ति का कारण ग्रादर्श है। आदर्श में श्रेयत्व बतलाकर उसका वरण व्यक्ति द्वारा करानेवाला शिक्षक है। भाव अपनी वृद्धि के लिये जब सर्वार्पण-बलि माँगता है, तब व्यक्ति घबराता है। उसके प्रेम की परीक्षा होती है। बलि में अपना सर्वनाश दिखता है, परन्तु यदि भाव उसे पचाकर उग निकले, तो व्यक्ति श्रीप्रभु के किसी भाव के सम्मुख होता है।

आदर्श यही शून्य है। यही प्रत्यक्ष बनने के लिये बलि (सैक्रीफाइस) माँगता है। बलि सुख-शान्ति-भोग और श्रेयत्व-मय अस्तित्व का देना पड़ता है। भाव ही इस शून्य का सुख है, जिससे बलि का उसमें चोषण और पाचन होता है तथा भाव का कारण व्यक्त होकर उग निकलता है। यही श्रीप्रभु-चरणों में किसी लक्ष्य से अमर जीवन है।

अन्य तत्वों की तरह शून्य-तत्व को भी पचाना पड़ता है। यदि उसका अजीर्ण हो जाए, तो वासनाएँ कुण्ठित हो जाती हैं और पुनः उगकर व्यक्ति को गिरा देती हैं। भक्ति द्वारा ही शून्य सरलता से पच सकता है। श्रीप्रभु-चरणों में मन को रस आना, यही शून्य-पाचन का चिह्न है। इसी कारण ऊर्ध्वाम्नाय में इस तत्व का पृथक् रूप से सेवन वर्ज्य किया गया है। समझ में आना कठिन है। शून्यस्थ भक्ति के स्थान में विषय-वृद्धि की अत्यन्त सम्भावना सदैव रहती है, जिससे व्यक्ति शनैः शनैः खड्डे में गिर-कर, चुस कर भक्षिणी का शिकार बनता है। खबरदार !!

श्री मां नील-तारा

('चण्डी' वर्ष ७ : सम्वत् २००५ वि०—सन् १९४८ ई० : सं० ७)

अग्नि-सर-वासिनी शूर सब चासिनी, शासिनी विश्व श्रीनील-तारा।
देवी विद्या वरा पञ्च - तत्वात्मिका, पञ्च - पञ्चात्मिका तत्व-सारा ॥ १
खड्ग खप्पर-धारी अभय-वर-सुरसरी, सर अनल तल-महा दिव्य-पारा।
मुण्ड - माला धरा दिव्य - दर्शन - परा, भक्त तम तारिणी तार - सारा ॥ २
एक चिन्मयि अनन्ताण्ड कर-धारिणी, दिव्य आनन्द-दायिनि अधारा।
धारणा-धर धारा धराऽधार धर, पूर्ण-पारा परापर विधारा ॥ ३
अक्षय मरकरा भक्त-जन-पालिनी, अचल फल-दान-दायिनि अपारा।
'मोति' कल्याणदा भक्ति-वर दानदा, ज्ञानदा ज्ञान - विद्या अपारा ॥ ४

कौल-समाज ट्रस्ट

('चण्डी' वर्ष ७ : सम्वत् २००५—सन् १९४८ ई० : सं० ७)

[प्रस्तुत लेख के सम्बन्ध में 'चण्डी' के प्रवर्तक 'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल जी द्वारा जो सम्पादकीय टिप्पणी की गई थी, उसका अपना महत्त्व है। वह टिप्पणी इस प्रकार है—'यह बात कदाचित् शाक्त-साधक भी न जानते होंगे कि योगि-राज तन्त्र-सिद्ध श्रीमान् बाबा मोतीलाल जी महाराज वर्षों से शाक्त-धर्म के सिद्धान्तों का प्रकट रूप से उपदेश कर रहे हैं। यही नहीं, पूज्य - चरण श्रीमान् बाबा जी महाराज ने शाक्त-समाज को सुगठित करने के लिए एक विशेष व्यवस्था तक ही बना डाली है। उनकी उस महत्व-पूर्ण व्यवस्था का एक अंश 'चण्डी' के पाठकों के लिए यहाँ भेंट किया जाता है। इसे पढ़कर हमारे शाक्त-बन्धु समझेंगे कि श्रीमान् बाबाश्री महाराज समग्र भारतीय शाक्त-समाज को किस रूप में देखना चाहते हैं और वे उसको समुन्नत करने के लिए अपने एकान्त-वास में भी कहाँ तक यत्न-शील रहते हैं।'—सं०]

१—एक पिता के यदि दश सन्तानें हैं (पुत्र अथवा कन्या), तो पिता की 'जंगम' मिल्कियत में दसों का समान भाग होना न्याय है। पिता की 'स्थावर' मिल्कियत (क्षेत्र, ग्राम, गृह आदि) का मालिक ज्येष्ठ पुत्र ही हो सकता है, अन्य नहीं। पिता की 'जंगम' मिल्कियत में भी ज्येष्ठ पुत्र का अन्य सन्तानों के साथ समान भाग है। पुं—सन्तान के अभाव में ज्येष्ठ कन्या पिता की स्थावर मिल्कियत की मालिक हो। यदि दूसरी कन्यायें हों, तो उनमें जंगम मिल्कियत बाँटी जाय बराबर हिस्सों में।

२—यदि किसी व्यक्ति के कोई सन्तान न हो, तो वह व्यक्ति इच्छित सन्तान गोद ले उसे अपनी मिल्कियत अर्पण कर सकता है। अथवा जिस व्यक्ति के नाम वह व्यक्ति लिख दे, वह उस मिल्कियत का मालिक होगा। यदि वह व्यक्ति 'विल' किए बिना मर जाय, तो उसकी उस मिल्कियत का मालिक 'कौल-समाज-ट्रस्ट' हो जायेगा। दूसरे सम्बन्धियों का उस सम्पत्ति में कुछ भी अधिकार न होगा।

३—'कौल-समाज-ट्रस्ट' कौलों की एक समिति होगी, जिसका निर्माण कौल-समाज करेगा।

४—समाज का प्रत्येक व्यक्ति, जिसे शाक्त-समाज शाक्त-रूप से स्वीकार करें, कौल-समाज का सदस्य हो सकता है।

५—समाजोन्नति-प्रयासार्थ सामाजिक द्रव्य-कोष नियमित रूप का होना चाहिये। उस द्रव्य-कोष की पूर्ति के निमित्त प्रत्येक कमाते हुए शाक्त व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपनी मासिक आय में से प्रतिरुपया एक पाई समाज-कोष को सहर्ष अर्पण किया करे।

६—समाज-कोष समाज में से समाज द्वारा चुने हुए व्यक्तियों के प्रबन्ध में रहेगा। कोष-संरक्षणार्थ समाज में से ट्रस्टीज चुने जायँ, जिनके संरक्षण में कोष-द्रव्य रहे।

७—ट्रस्टियों को बदलने का समाज को अधिकार है।

८—प्रति वर्ष समाज के सदस्यों का सम्मेलन हो, जिसमें समाज के सदस्यों का सम्मेलन हो, जिसमें समाज की क्रियाओं की आलोचना की जाय। यदि समाज के किसी व्यक्ति के यहाँ यज्ञोपवीत, विवाहादि किसी भी उत्सव का कार्य हो, तो उस उत्सव - कार्य में वह व्यक्ति जितना व्यय करे, उसका दशांश या शतांश अपनी श्रद्धानुसार समाज-कोष को अर्पण करे।

९—पूर्वजों से प्राप्त स्थावर मिल्कियत को बेचने या गिरों रखने का अधिकार मिल्कियत पानेवाले ज्येष्ठ पुत्र को या किसी दूसरे को नहीं है। मिल्कियत पानेवाले ज्येष्ठ पुत्रादि का अधिकार मात्र मिल्कियत के संरक्षण करने का तथा उसमें वृद्धि करने का है।

१०—कन्या का विवाह-काल पन्द्रहवें (पञ्चदश) या सोलहवें (षोडश) वर्ष में है। पुरुष का विवाह-काल अठारह से बीस वर्ष की अवस्था में है।

११—पुरुष यदि तीस वर्ष की वय के उपरान्त विवाह करे, तो अपने युक्त आयु की विधवा से करना चाहिये। पचास वर्ष की अवस्था के उपरान्त पुरुष को तथा स्त्री को विवाह करने का अधिकार नहीं। उन्हें समाज के हित-कार्य तथा आत्म-साधन में प्रवृत्त हो जाना चाहिये।

१२—किसी स्त्री के यदि विधवावस्था में सन्तान हो जाय, तथा उस सन्तान का वह स्त्री किसी कारण पोषण न कर सके, तो वह स्त्री उस सन्तान को समाज ट्रस्ट को अर्पण कर दे। ऐसी सन्तान के पोषण करने का कर्तव्य समाज ट्रस्ट का है।

१३—निराधार कौलों को समाज-ट्रस्ट सहायता दे। वह समाज-हितार्थ कला, उद्योग, व्यापारादि की संस्थायें स्थापित करे, जिनके आय-व्यय का हिसाब समाज-ट्रस्ट के हाथ में रहे। इन संस्थाओं में साधारण मजदूर से मैनेजर-पर्यन्त सब कार्यकर्ता कौल-समाज के ही हों। स्त्री तथा पुरुष दोनों इन संस्थाओं में काम कर सकते हैं। चौदह वर्ष से नीचे के बालक को नौकरी में भरती नहीं किया जा सकता।

१४—कौल बालक-बालिकायें किसी भी संस्था तथा विद्यालय में इच्छित शिक्षा पा सकते हैं। समाज-ट्रस्ट को अपनी निज की शिक्षण-संस्थाएँ एवं विद्यालय भी क्रमशः खोलने चाहिए।

१५—पारस्परिक निन्दा तथा कटुवाद सामाजिक नियम बनाकर बन्द कर देने चाहिए।

१६—कन्या को यदि कुँवारी अवस्था में कारण-वश गर्भ रह जाय तथा कन्या के माता-पिता उत्पन्न होनेवाली उस सन्तान की जवाबदारी लेना स्वीकार न करें, तो उस सन्तान के भरण-पोषण का भार समाज-ट्रस्ट पर होगा। सन्तान को जन्म देने के पश्चात् कौल कन्या मां-बाप के घर में पुनः रहे तथा माता-पिता घृणा-रहित सच्चित् से उसे पुनः ग्रहण करें। जिससे गर्भ रहा हो, उससे यदि कन्या का विवाह हो जाय, तो उत्तम है। यदि कारण-वश ऐसा न हो सके, तो कन्या दूसरे इच्छित पुरुष से विवाह कर सकती है।

१७—कन्या तथा बालकों के शिक्षण-निमित्त पृथक्-पृथक् संस्थायें होनी चाहिये।

१८—कौल ट्रस्ट को प्राप्त हुई स्थावर सम्पत्ति के बेचने का अधिकार यदि आवश्यकता हो, तो कौल-ट्रस्ट को है।

१९—कौल-समाज के व्यक्तियों को किसी दूसरे से द्रव्य या आवश्यक पदार्थ उधार लेने का अधिकार नहीं। यदि आवश्यकता हो, तो उन्हें कौल-समाज-ट्रस्ट को प्रार्थनापत्र भेजना चाहिये। कौल-समाज-ट्रस्ट उस प्रार्थनापत्र पर विचार कर आवश्यकतानुसार बिना ब्याज द्रव्य उस व्यक्ति को दे तथा समाज के नियमानुसार वह द्रव्य नियमित काल में समाज-ट्रस्ट को वह व्यक्ति लौटा दे। यदि वह व्यक्ति ऐसा न करे तथा द्रव्य न लौटा सकने के युक्त कारण समाज के सम्मुख न रख सके, तो उस व्यक्ति की मिल्कियत में से समाज उस द्रव्य को वसूल करे। उस व्यक्ति की मिल्कियत का प्रबन्ध हाथ में ले। उसमें से उस व्यक्ति के खर्च के लिए अमुक रकम देते हुये बाकी अमुक रकम वसूल कर कर्जे के हिसाब में जमा

करे। कर्जा पूर्ण वसूल हो जाने पर व्यक्ति का मिल्कियत लौटा दे। यदि कर्जा लेनेवाले के पास मिल्कियत न हो, तो उसके वेतन में से प्रति-मास (समयानुसार) पच्चीस या दस प्रतिशत वसूल करे।

२०—सम्मिलित कुटुम्ब दीर्घानुभव से सदैव आपत्ति का कारण देखा गया है। भाइयों में झगड़ा खड़ा होता है तथा अन्त में सारा द्रव्य अदालत खा जाती है। इससे संयुक्त कुटुम्ब की प्रथा वर्ज्य है। पिता के मरते ही उपर्युक्त नियमानुसार द्रव्य का विभाग हो जाना उचित है।

२१—आगम-ग्रन्थोक्त दश संस्कार पुत्र तथा कन्या दोनों के होने चाहिए। यज्ञोपवीत संस्कार पुत्र तथा कन्या दोनों के दस से बारह वर्ष की अवस्था में होना उचित है। संस्कार-विधान महा-निर्वाणादि तन्त्र-ग्रन्थों में बताए गए हैं। संस्कारानन्तर ब्रह्मचर्य - दीक्षा के उद्देश्य तथा नियम कन्या तथा पुत्र दोनों को स्पष्ट शब्दों में, जिससे वे उन हितकर नियमों को भली प्रकार समझ सकें—समझाना चाहिये। विवाह-विधान भी कौल-प्रथानुसार होना चाहिये।

२२—किसी प्रकार का संक्रामक रोग वर अथवा कन्या दोनों में से किसी को नहीं है, इस आशय का चिकित्सक का प्रमाण-पत्र कन्या तथा वर दोनों को विवाह के प्रथम समाज - नेता के सम्मुख उपस्थित करना होगा।

२३—यदि कन्या तथा वर दोनों में से किसी को संक्रामक रोग हो, तो विवाह के पश्चात् भी दोनों का पृथक् होना अर्थात् विवाह तोड़ा जाना उचित है।

२४—यदि विवाह के पश्चात् वर-वधू दोनों में से किसी की एक दूसरे के प्रति लगातार क्रूरता सिद्ध की जा सके, तो दोनों का पारस्परिक पति-पत्नी-सम्बन्ध तोड़ा जा सकता है।

२५—सम्बन्ध तोड़ने के पश्चात् दोनों को इच्छा होने से दोनों का सम्बन्ध पुनः जोड़ा जा सकता है। यदि ऐसा न हो, तो उनमें से प्रत्येक दूसरा सम्बन्ध अर्थात् विवाह कर सकते हैं।

२६—विवाह तोड़ने की अवस्था में यदि पाँच वर्ष से कम उमर की सन्तान हो, तो उस सन्तान को रखने का अधिकार उस सन्तान की माता को प्राप्त है। यदि ५ वर्ष से अधिक आयुवाली सन्तान है, तो उस सन्तान का अधिकार पिता को होगा। यदि पति-पत्नी दोनों के परस्पर सम्बन्ध तोड़ने के काल में पुत्र एक ही है तथा वह ज्येष्ठ पुत्र है तथा उसकी वय पाँच वर्ष से कम है, तो उस पुत्र का अधिकार उस पुत्र के पिता को प्राप्त है। पाँच वर्ष से कम उमर वाले अन्य पुत्रों का अधिकार माता को प्राप्त है। त्वरित जन्मा हुआ भी ज्येष्ठ पुत्र पिता का है, माता का नहीं।

२७—माता के साथ जानेवाली सन्तान को अपनी माता तथा दूसरे नवीन पिता की सम्पत्ति में हिस्से का अधिकार है अर्थात् वह अपनी माता की सम्पत्ति का पूर्णाधिकारी है। नवीन पिता की सम्पत्ति में भी वह यथा-नियम हिस्से का अधिकारी है।

२८—स्त्री जिस पुरुष से विवाह करे, उस पुरुष की ज्येष्ठ सन्तान ही (यदि प्रथम विवाह से कोई हो) उस पुरुष की ज्येष्ठ सन्तान गिनी जायगी तथा वही अपने पिता की स्थावर सम्पत्ति की मालिक होगी, स्त्री के प्रथम विवाह का स्त्री के साथ आया हुआ पुत्र नहीं, चाहे वह उमर में बड़ा क्यों न हो।

२९—यदि स्त्री विधवा होने पर किसी अन्य पुरुष से विवाह करना न चाहे तथा ब्रह्मचर्य के नियमानुसार रहना स्वीकार करे, तो वह समाज-ट्रस्ट से निवेदन कर समाज-सेवा एवं आत्म-साधन के कार्य में प्रवृत्त हो सकती है। समाज-ट्रस्ट का कर्त्तव्य है कि उसको उद्योग, कला आदि सिखाकर ट्रस्ट के औद्योगिक धन्धों में लगा दे।

३०—यदि किसी स्त्री या पुरुष की आजन्म कुँवारे रहने की इच्छा हो, तो वे आजन्म कुँवारे रह समाज-सेवा कर सकते हैं।

३१—विवाहिता स्त्री के घर में जीवित रहते समाज के पुरुष व्यक्ति को अन्य स्त्री घर में रखने (या पासवान रखने) या अन्य किसी स्त्री से दूसरा विवाह करने का अधिकार नहीं है। विवाह करने के १२ वर्ष पश्चात् तक यदि विवाहिता स्त्री को कोई सन्तान न हो और यदि विवाहिता स्त्री में बन्ध्यत्व दोष वैद्य अथवा डाक्टर द्वारा सिद्ध किया जा सके, तो पुरुष को अधिकार है कि वह प्रथम विवाहिता स्त्री के भरण-पोषण का पूरा प्रबन्ध कर (जिसमें समाज ट्रस्ट के सदस्यों के प्रमाण-पत्र की आवश्यकता होगी) कौल नियमोक्त अपने वय के अनुसार द्वितीय विवाह कर सकता है। उसमें भी प्रथम विवाहिता स्त्री की सम्मति लेनी चाहिए। यदि स्त्री सम्मति न दे, तो उस व्यक्ति को दूसरा विवाह करने का अधिकार नहीं है।

३२—यदि किसी व्यक्ति के प्रथम स्त्री से दो या अधिक सन्तानें हैं तथा वह स्त्री सन्तान छोड़ मर जाय, तो तीन से अधिक सन्तान सम्मुख होने पर व्यक्ति को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं (४० वर्ष से कम उमर होने से कर सकता है अन्यथा नहीं। दो से कम सन्तान होने से या सन्तान न होने से ही वह व्यक्ति दूसरा विवाह कर सकता है। यह नियम स्त्रियों के लिए भी उपर्युक्त प्रकार से ही है)।

३३—अविवाहित स्त्री को पासवान बनाकर रखना कौल-नीति के विरुद्ध है।

३४—प्रत्येक बालक तथा बालिका का शिक्षण पाँचवें वर्ष अथवा छठवें वर्ष से अवश्य प्रारम्भ हो जाना चाहिए। प्रारम्भ में 'पाटी-पूजन-विधान' कौल-नियमानुसार हो।

३५—प्रत्येक कौल का कर्त्तव्य है कि वह नियमानुसार नित्य प्रातः-कृत्य इष्टोपासनादि करे।

श्री दशमयी बाला

('चण्डी' वर्ष ७ : सम्वत् २००५ वि०—सन् १९४८ ई० : सं० ८)

श्रीकाली बगलामुखी च ललिता धूमावती भैरवी। मातङ्गी भुवनेश्वरी च कमला श्रीबज्र-वैरोचनी॥
तारा-पूर्व-महा-पदेन कथिता विद्या स्वयं शम्भुना। लीला-रूप-मया श्रिया च दशधा बाला च मां पातु सा॥
मुखे श्रीमातङ्गी तरणि किल तारा च नयने। तदन्तर्गा काली भृकुटि-दशने भैरवि-कला॥
कटिच्छिन्ना धूमावति कच-कुचौ श्रीकमलजा। पदान्ते ब्रह्मास्त्रा जयतु किल बाला दश-मयी॥
विराजन्मन्दार-द्रुम-कुसुम-हार-स्तन-तटी। त्रास-त्राण-स्फटिक-गुटिका - पुस्तक-करे।
गले रेखा-तिस्र गमक-गतिगीतैक-निपुणे। सदा पीता हाला जयतु किल बाला दश-मयी॥

भगवती दक्षिणा कालिका मां

('चण्डी' वर्ष ७ : सम्वत् २००५ वि०—सन् १९४८ ई० : सं० ९)

जयति जय मातु श्रीदक्षिणा कालिका।
पाल शरणागता वाम संचालिका॥जयति०१॥
पद्मा शव शिव धरा चासन रति-करा।
गति विपरीत रति विश्व गति चालिका।जयति०२॥
मुण्ड-खप्पर-धरा खड्ग-वर पर-करा।
अनल तत्वाधिपा भक्त-जन-पालिका॥जयति०३॥
देव सुर विष्णु रुद्रादि कर-पुट-स्तवा।
शक्ति पर पार गति तत्व तत्वालिका॥ जयति०४॥
मद्यपा मद्य मदहा शिवा शंकुपा।
पाप-पाखण्ड पशु सत्वहा नालिका॥जयति०५॥
अलख आनन्ददा स्व-जन सत-स्पन्ददा।
दानदा मानदा पानदा पालिका॥जयति०६॥
ज्ञान-विद्या-धरा भक्त निज ज्ञानदा।
सर्व सन्मानदा अतुल बल-शालिका॥जयति०७॥
'मोति' ज्योति-प्रदा भक्त भव भय-हरा।
मुक्तिदा भुक्तिदा भक्तिदा कालिका॥जयति०८॥

प्रवचन

शक्ति-पाचन

('चण्डी' वर्ष ७ : सम्वत् २००५ वि०—सन् १९४८ ई० : सं० ८)

शक्ति-प्राकटय

शक्ति क्या है, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं समझी जाती, परन्तु फिर भी उसको पूरी तरह से समझनेवाला कोई नहीं है, क्योंकि वह अनन्त है। शक्ति का अनुभव व्यक्ति को पहले-पहल अपने में होता है। भूख और ठण्ड से शक्ति का ह्रास होता दिखाई पड़ता है। माता की गोद में दोनों की पूर्ति होती है। अपने शरीर में पोषण - युक्त रक्त-संचार व उष्णता का अनुभव होता है।

कोई ऐसा जीव नहीं, जो इस ऋण और धन (माइनस एण्ड प्लस) को न अनुभव करता हो, परन्तु फिर भी अपनी-अपनी कोटि के अनुसार एक का अनुभव दूसरे को नहीं होता। मछली व मेढक को पानी में ठण्ड नहीं लगती, ऊँट को रेगिस्तान की धूप में गर्मी नहीं लगती, उसी प्रकार एक कोटि के मनुष्य को दूसरे कोटि के मनुष्य की आवश्यकता का अनुभव नहीं होता।

फिर भी क्षुधा, तृषा, दारिद्रय, रोग सबको सताते हैं और ऐसा कहा जा सकता है कि किसी भी प्रकार के दुःख के दूर हो जाने का कारण कोई-न-कोई 'शक्ति' ही होती है। प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति का कारण यही जीवन-शक्ति है। आवश्यकता पड़ने पर यही 'शक्ति' गुरु-भाव को उत्पन्न कर उपाय-रूप से प्रति - क्षण गुरु-भाव को प्रकट करती है।

दुःख-निवृत्ति और आवश्यकता-पूर्ति का कारण जानने पर भी उसकी परिभाषा हमें नहीं मिलती और न उसका बोध ही होता है। 'कुछ भी कर सकने का कारण'—ऐसा भी 'शक्ति'-शब्द का क्वचित् अर्थ किया जाता है, परन्तु शब्द शब्द ही रह जाता है, अनुभव में परिणत नहीं होता। जिस व्यक्ति को जो अन्तरानुभव हो जाये, उसका वर्णन पूर्ण रूप में वह व्यक्ति शब्दों में नहीं कर सकता। सम्भव है, दूसरे व्यक्ति के स्वानुभव का अनुभव कराया जा सके। विज्ञान - लक्ष्य में थोड़ी सी उपमा अवश्य दी जा सकती है।

जो पाठक अंग्रेजी जानते हैं, उन्होंने 'इनर्जी' शब्द सुना होगा। यही प्रत्येक परिणमन का कारण है। उत्पत्ति, स्थिति और लय—तीनों इसके ही कारण होते हैं। यह स्वयं क्या है, शब्द में नहीं कहा जा सकता। इसकी तीन स्थितियाँ देखने में आती हैं—१ पोटेंशियल (भावी-मय), २ डाइनामिक (विस्फोट-मय) और ३ किनटिक (गति-मय)।

कोयले का टुकड़ा परिणत हो सकता है, इसलिए कि उसमें कुछ भरा हुआ है, जो भविष्य में प्रकट हो सकता है, किन्तु अभी गुप्त है। उस कोयले को घिसा अथवा गरम किया जाय, तो उसमें से कुछ प्रकट होगा, कुछ फट निकलेगा, उसमें परिणमन होगा। इस परिणमन का कारण 'शक्ति' है। परिणमन होने के बाद अर्थात् प्राण-प्रद वायु से उसका संयुक्तत्व होने पर उसमें से गति उत्पन्न होती है, जो उष्णता है। स्मरण रहे कि अग्नि उष्णता नहीं है और न तो वह काश है। कोयले में अग्नि-प्राकटय के बाद ही ये दोनों दिखाई पड़ते हैं। प्राकटय जिस वस्तु का होता है, बस वही 'शक्ति' है।

अव्यक्त में से व्यक्त होना, यही 'शक्ति' का प्राकट्य है, परन्तु उस अव्यक्त स्थिति का भी कोई कारण है, जो 'शक्ति' नहीं है—'शक्ति' के परे है। उसी का 'शक्ति' एक स्वरूप है। यही चिद्-गति—'कांशस इनर्जी' इस विश्व का कारण है। वही स्वेच्छा व स्व-न्याय से सर्व-परिणमन को प्रकट करती रहती है।

चित्-तत्व का ज्ञान और इस विद्या को जाननेवाला भारत

तत्व-परिणमन आँख से देखा जा सकता है। रसायन-शास्त्र के प्रयोग इसका दिग्दर्शन कराते हैं। एकत्व की दूसरे तत्व पर जो क्रिया होती है, वह अदृश्य है। उसकी प्रति-क्रिया का परिणाम इन्द्रिय-गोचर है, जिसे 'रियेक्शन' कहते हैं। तत्व का मात्र गति से भी प्राकट्य हो जाता है। इसका उदाहरण विद्युत् है। लौह चुम्बक के दो छोरों के बीच में सुरक्षित तार का कुण्डाल—'कॉयल' गोल गति से घुमाने से, उस कुण्डाले के दो छोरों में दबाव उत्पन्न होता है, जिनके मिलने से चिनगारी (स्पार्क) प्रकट होती है। एक छोर से दूसरे छोर में जो गति उत्पन्न हो जाती है, वही विद्युत् है। चुम्बक के शून्य (फील्ड) को कुण्डाले द्वारा काटने से यह प्रकट होता है। इसमें विस्फोट कुण्डाले के अन्दर होता है, यही दोनों छोरों में दबाव डालता है, जिसे धन-युत (पाजिटिव) और ऋण-युत (निगेटिव) रूप से हम देखते हैं। तीसरा उदाहरण हमको मोटर-गाड़ी के एञ्जिन में मिलेगा। पवन के साथ पेट्रोल चूसा जाता है, धूम्र-रूप में दबाया जाता है और विद्युत् से प्रज्वलित हो विस्फोट उत्पन्न करता है। यही गति-रूप में परिणत होकर गाड़ी को चलाता है। गति वेग धारण करती है। वह प्रति घण्टा मील के हिसाब से नापी जाती है, परन्तु यह उस एञ्जिन की 'शक्ति' नहीं है।

'गति' का नाप 'रिवाल्यूशंस प्रति मिनट' है। 'शक्ति' का माप 'हॉर्स पावर' है। कितनी रुकावट को विजय कर सकती है, यही उसका माप है। यहाँ 'शक्ति' की एक नयी परिभाषा हमें मिल जाती है, वह है रुकावट पर विजय। विश्व में जिस प्रकार 'गति' व्यापिनी है, उसी प्रकार 'अगति' (इनर्शिया) भी व्यापिनी है। 'अगति' को गति-मान् बनाने में 'शक्ति' की आवश्यकता पड़ती है, ठीक जैसे अव्यक्त को व्यक्त करने में।

इन तीन प्रकार के उदाहरणों के बाद हम जीव-शास्त्र से यदि उदाहरण चाहें, तो प्रयोग-रूप से नहीं मिलता, क्योंकि इस समय वह विद्या पूर्ण रूप से प्रकट नहीं हुई है। फिर भी टूटा-फूटा उदाहरण कृत्रिम अण्डे में हमें मिलता है। यदि अण्डे के सर्व-रासायनिक तत्व एकत्र करके शरीर की उष्णता की समता पर बन्द रखे जायँ, तो उसमें वृद्धि होती है, परन्तु कोई पक्षी उत्पन्न नहीं होता। इसका क्या कारण है? रासायनिक शास्त्री को न तो खबर है कि वह किस बीज को बो रहा है और न उसका चिद्-भाव वह अपने में से या प्रकृति में से आकर्षित कर उसमें डाल सकता है। आधुनिक शास्त्र को नाना प्रकार के तत्वों का ज्ञान हुआ, परन्तु चित्-तत्व का ज्ञान अभी तक नहीं हुआ, न उसका कोई उपयोग-प्रयोग हुआ। इस विद्या को जाननेवाला एक भारत ही था और वह विद्या अब यहाँ भी लुप्त-प्राय हो गई है।

चित्-तत्व शून्य में ही प्रकट हो सकता है

भला इसका कारण क्या यही है कि चित्-तत्व शून्य में ही प्रकट हो सकता है, अन्यत्र नहीं? शून्य का अध्ययन करानेवाला कोई शास्त्र नहीं है। उसका टूटा-फूटा वर्णन बैखरी-रूप से हमारे यहाँ अब भी है, लेकिन न तो शाला है, न अध्यापक, न विद्यार्थी! इतनी दुर्दशा होते हुए भी हमको अपने में जीवन-

सभी रात्रियाँ देवी-रूपा हैं। इनके विभिन्न नाम, ध्यान तथा भौतिक स्थूल रूपों का वर्णन तन्त्र-ग्रन्थों में मिलता है। 'श्रीविद्यार्णव तन्त्र' में 'काल-रात्रि' के कुछ पर्याय नाम भी दिए हैं। यथा—

'काल-रात्रि, महा-रात्रि, कटुका, सुभगा, शिवा। मोहिनी, मोह-रात्रिश्च, विद्या कटुक-पत्रिका।।'

महा-रात्रि, सुभगा, शिवा और विद्या—इन नामों से यह 'रात्रि' सौन्दर्य-मयी एवं श्रीविद्या का विशिष्ट अंग होने से साधकों को सर्व-प्रकारेण कल्याण-कारी सिद्ध होती है, जबकि विपरीत आचरण करनेवालों को काल की भयङ्कर रात्रि के समान घातक सिद्ध होती है। मोह-निशा में अज्ञानी जन सोते हैं, जबकि संयमी जागते हैं।

दीवाली की रात्रि को ही 'काल-रात्रि' कहा गया है, जिसमें श्री महा-लक्ष्मी एवं गणेश जी का विशेष रूप से पूजन किया जाता है। लक्ष्मी समृद्धि की एवं गणेश बुद्धि, विद्या, विवेक और विकास के पावन-तम प्रतीक हैं। लक्ष्मी-वाहन उलूक अज्ञान का प्रतीक है, जिस पर नियन्त्रण करने से ही समृद्धि सम्भव है। इस रात्रि का अधिपति शुक्र होने से धन-धान्य आदि से समृद्ध करता है। पूजन के पश्चात् अर्द्ध-रात्रि के बाद कुछ समय को 'महा-निशा' की विशेष संज्ञा दी गई है, जिसमें सभी प्रकार के मन्त्र—वैदिक, तान्त्रिक, पौराणिक और शाबरी शीघ्र चैतन्य होकर साधक को अभीष्ट प्रदान करते हैं। रात्रि के अंतिम प्रहर में हम श्रीलक्ष्मी जी की बड़ी बहन ज्येष्ठा लक्ष्मी (दरिद्रा देवी) से यह प्रार्थना करते हैं कि——

"हे माँ! आप लक्ष्मी जी की बड़ी बहन हैं, हमारे घर से दुख-दारिद्रच दूर ले जाँय और अन्यत्र निवास करें।"

घर के प्रत्येक कोने में सूप को हाथ से बजाते हुए घर के बाहर निकलते हैं। सूप बजाते समय यह भावना बनाए रखते हैं कि दरिद्रता हमारे घर से निकल रही है। इस प्रकार करने से निश्चय ही घर में धीरे-धीरे समृद्धि का आगमन होता है।

भूल-सुधार

इन्द्र-कृत महालक्ष्म्यष्टक स्तोत्र

'कुल-शेखर' श्रीमहेशचन्द जी गर्ग के मत से गताङ्क में पृष्ठ ३० पर उक्त स्तोत्र प्रकाशित में जो ध्यान दिया है, वह अशुद्ध होने के साथ ही अपूर्ण भी है। उसका शुद्ध-स्वरूप निम्न प्रकार है——

सहस्र-दल-पद्मस्थ-कर्णिका-वासिनीं पराम्, शरत्-पार्वण-कोटीन्दु-प्रभा-जुष्ट-करां वराम् ।।१

स्व-तेजसा प्रज्वलन्तीं सुख-दृश्यां मनोहराम्, प्रतप्त-कांचन-निभ-शोभा-मूर्ति-मतीं सतीम् ।।२

रत्न-भूषण-भूषाढ्यां पीत-वस्त्र-विभूषितां, ईषद्-हास्यां प्रसन्नास्यां शश्वत्-सुस्थिर-यौवनां।।३

अशेष-शेष-सौभाग्य-सम्पदा-योनिरुत्तमाम्, सर्वोत्कृष्टां सर्व-मयीं सर्वां सर्वेश्वर-प्रियाम् ।।४

सर्वैश्वर्य-गुणोपेतां नित्य-शुद्ध-स्वरूपिणीम्, सर्व-सम्पत्-प्रदात्रीं च महा-लक्ष्मीं भजे शुभाम् ।।५

मन्त्र—श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमल-वासिन्यै स्वाहा (१२) : विवरण हेतु देखें 'मन्त्र-कोष', पृष्ठ २१३

पाठ-भेद—मुष्टि-करां——मुष् = छीनना, फीका करना, अपहरण करना जुष्ट; = धारण करना।

विशेष : ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेर, राज-राजेश्वर दक्ष, सावर्णि मनु, प्रिय-व्रत, उत्तानपाद आदि ने उक्त मन्त्र द्वारा लक्ष्मी की आराधना की और उक्त साम-वेदोक्त ध्यान श्रीहरि ने ब्रह्मा को दिया।

'श्रीछाया-पीठं' से गौरवान्वित 'तामिलनाडु' की एक झलक

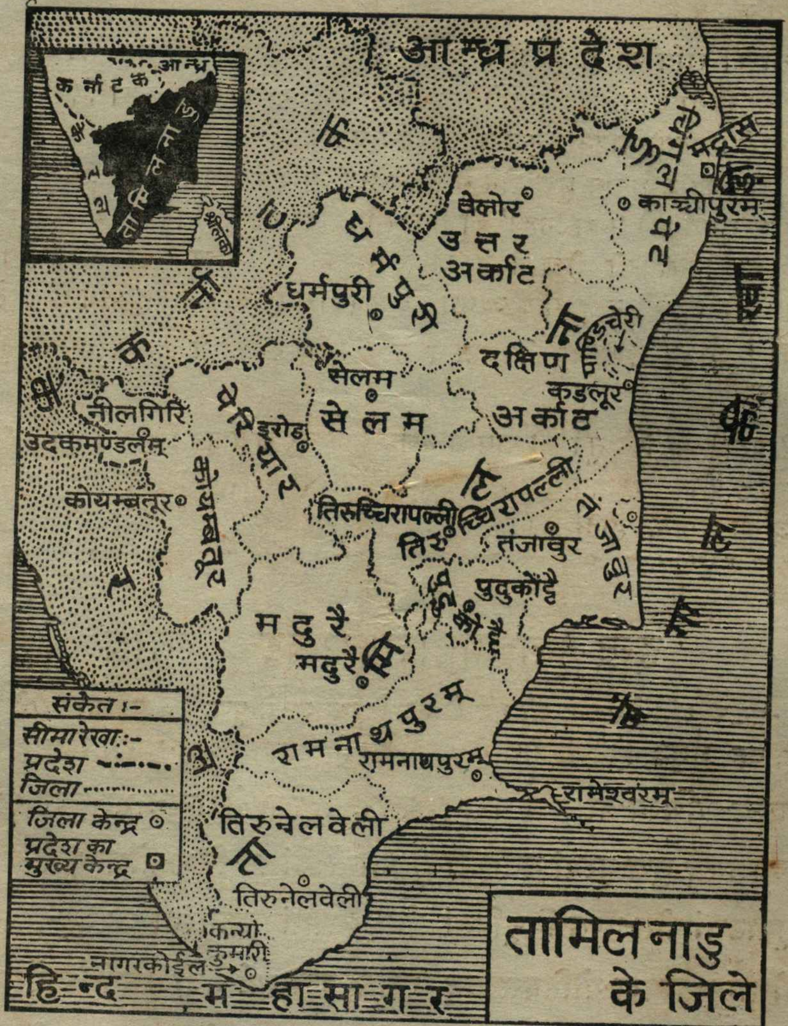

[तामिलनाडु में 'तिरुच्चिरापल्ली' जनपद, जहाँ 'श्रीछाया-पीठं' स्थित है।]

सम्पादक एवं मुद्रक : श्रीऋतशील शर्मा, परा वाणी प्रेस, इलाहाबाद—६